Yogesh Kumar Tripathi

कालिदास-प्रणीतम्

नशाकुन्तलम्

(चतुर्थ अंक)



भारत एजेन्सीज़

इलाहाबाद

Yogesh Kumar Tripathi
कादम्बरी kadambari

कादम्बरी

महाकविकालिदासप्रणीतम्

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

चतुर्थोऽङ्कः (नाटक)

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिये संस्कृत की पाठ्यपुस्तक

(प्रथम प्रश्नपत्र)

सम्पादक

पं० दयाशंकर तिवारी

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, इतिहास), एल०टी०, साहित्यरत्न,

प्रवक्ता एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष

सी० ए० वी० इण्टरमीडिएट कालेज, इलाहाबाद (उ० प्र०)

प्रकाशक

भारत एजेन्सीज़

27 जानसेनगंज, इलाहाबाद

गजट संख्या 9/171 दिनांक 3 जुलाई, 1999 के अनुसार वर्ष 2001 की इण्टरमीडिएट (कक्षा 11 व कक्षा 12) संस्कृत की परीक्षा के लिये निम्नलिखित पाठ्यपुस्तक माध्यमिक शिक्षा परिषद् उ० प्र० इलाहाबाद द्वारा निर्धारित की गई है।

	प्रथम प्रश्न पत्र	50 अंक
कादम्बरी	(विन्ध्याटवी वर्णन से पूर्व)	17 अंक
दशकुमारचरितम्	(अष्टम् उच्छ्वास)	
रघुवंशमहाकाव्यम्	(द्वितीय सर्ग)	17 अंक
किरातार्जुनीयम्	(प्रथम सर्ग)	
अभिज्ञानशाकुन्तलम्	(चतुर्थ अंक)	16 अंक
उत्तररामचरितम्	(षष्ठोऽङ्कः)	

	द्वितीय प्रश्न पत्र	50 अंक
दूतवाक्यम		9 अंक
संस्कृत व्याकरण		41 अंक

उक्त सभी पुस्तकें हमारी फर्म द्वारा प्रकाशित है।

मूल्य : 10.50

मुद्रक : एसआर आफसेट, इलाहाबाद

संस्करण : 2001

वितरक : भारत बुक डिपो, इलाहाबाद ✆ 401994

माँ के चरणों में समर्पित

विषयानुक्रम

———————

आमुख

"काव्येषु नाटकं रम्यं" अर्थात् काव्य में नाटक रमणीय है। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ आचार्य भरतमुनि का नाट्यशास्त्रम् है। भरतमुनि ने 'नाट्य' को मनोरंजन का साधन मानकर इसे दृश्य-श्रव्य काव्य का समन्वित रूप स्वीकार किया है। दृश्य काव्य को रूपक भी कहा जाता है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज ने कहा है—

"रूपा रोपात्तु रूपकम्।"

दशरूपककार धनंजय ने नाट्य की परिभाषा देते हुए लिखा है—

"अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्।"

नाटकों में कविकुलगुरु कालिदास का "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" एक कालजयी रचना है। जिस कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक ने उनकी कीर्ति कौमुदी को आज विश्वव्यापी एवं अजर अमर बना दिया है, जिनकी कविता कामिनी की माधुरी पर मुग्ध होकर विदेशी विद्वान् आश्चर्यचकित हैं, उस कालिदास का नाम आज विश्व नाट्य साहित्य के रंगमंच पर अद्वितीय है। कालिदास ने अभिज्ञान- शाकुन्तलम् में शकुन्तला के माध्यम से जीवन की दार्शनिक व्याख्या अत्यन्त भाव भरे कारुणिक शब्दों में किया है। जिस नाटक में सहृदय, संयमी, महाबली, अतिगम्भीर, पराक्रमी उत्तम पति और उच्चकोटि का प्रेमी नायक दुष्यन्त हो, जहाँ तपोवनवासिनी परित्यक्ता, सुशील, लज्जाशील, पतिव्रत धर्म का निर्वाह करने वाली विरही शकुन्तला नारी नाटक की नायिका के रूप में चित्रित हो, जहाँ मानवीय संवेदनाओं के मर्मज्ञ ऋषि कण्व निःस्वार्थ और आदर्श सात्विक प्रेम के मूर्तरूप विद्यमान हों, जहाँ गम्भीर, प्रौढ़, विचारशील और मितभाषिणी अनसूया हो और शिष्ट, विनीत मधुरभाषिणी, वाक्चतुर, मनोविनोद और हास्यप्रिय प्रियंवदा हो, वह नाटक लौकिक कान्तरति की एक बेजोड़ रचना है। नाटक का चतुर्थ अङ्क हृदय को झकझोर देता है। जहाँ शकुन्तला की विदायी के अवसर पर प्रकृति भी अत्यधिक भावुक और कोमल चित्त से अपना पुष्पोपहार प्रदान करती साक्षात् रूप में दिखायी पड़ती है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् का चतुर्थ अङ्क मदन विषयक चषक में ढालकर मधुर संगीत शिञ्जा भरे पदों वाली, कविताकामिनी के

कमनीय करों द्वारा छककर सहृदय समुदाय को पिलाने वाली आनन्दातिरेक सूचित करने वाली आकर्षक शारदी चन्द्रिका है। दुष्यन्त एक रोग से पीड़ित हो गया है और वह रोग शकुन्तला है। (अङ्क ६)। तपस्या तपस्वियों का धन है मन और शरीर का संयम एक कोष है। कन्या धरोहर है। त्याग, तपस्या और तपोवन में फैली हुई सभ्यता विश्वशान्ति का एक सुन्दर सन्देश है। तपोवन की गोद में फैली हुई सभ्यता सम्पूर्ण मानवजाति का सच्चा मङ्गल कर सकती है। राष्ट्र के भावी कर्णधार छात्र, सरस्वती के उपासक शिक्षक तथा सुधी भारतीय जन मेरे इस लघु प्रयास से थोड़ा भी लाभ उठा सके तो मैं अपने कर्तव्य को सार्थक समझूँगा।

—सम्पादक की लेखनी से

द्वितीय संस्करण का आत्म निवेदन

इण्टरमीडिएट संस्कृत के नवीन पाठ्यक्रम में निर्धारित सम्पूर्ण अंशों का सम्यक विस्तारपूर्वक विवेचन के साथ अभिज्ञानशाकुन्तलम् का यह चतुर्थ अंक आपके सामने प्रस्तुत है। अनावश्यक सामग्री और अनावश्यक विस्तार से बचा गया है। जिस सहृदयता एवं आत्मीय भाव से छात्रों, शिक्षकों और श्रेष्ठ विद्वानों ने इस पुस्तक को अपनाया है और अपनी सदाशयता का परिचय दिया है उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। विश्वास है यह द्वितीय संस्करण आपको नये कलेवर में अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा। अन्त में गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में—

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे॥
कवि न होहुँ नहि चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्याहीनू॥

तथा— मृग न कियो अभिषेक मिलि, नहि संस्कार विधान।
निज विक्रम अर्जित कियो, पद मृगेन्द्र बलवान॥

साभार—दयाशंकर तिवारी,

महाकवि कालिदास का जीवन परिचय

कालिदास की रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कालिदास ने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने जीवन के सम्बन्ध में किसी भी बात का उल्लेख नहीं किया है। इस सम्बन्ध में जनश्रुतियों, आनुमानिक प्रमाण तथा तत्कालीन ग्रन्थों का ही एकमात्र सहारा लिया जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कतिपय प्राचीन प्रतियों में नान्दी के अन्त में लिखा मिलता है कि इस नाटक का अभिनय विक्रमादित्य की परिषद् में हुआ था। संस्कृत काव्य में अश्वघोष पहले हुए। कालिदास ने उनका अनुकरण कर अपनी शैली का विकास और परिमार्जन किया। अतः कालिदास का स्थितिकाल प्रथम शताब्दी ई० पू० में माना जाता है। महाकवि कालिदास सम्राट विक्रमादित्य के प्राणप्रिय कवि मित्र थे।

प्राचीन काल में शारदानन्द नाम के एक राजा थे। उनकी पुत्री का नाम विद्योत्तमा था। उसे अपने रूप, लावण्य और विद्वत्ता पर अपार गर्व था। उसने यह निश्चय किया था कि मुझे शास्त्रार्थ में जो हरा देगा उसी के साथ मैं अपना विवाह करूँगी। बड़े-बड़े ज्ञानी, विद्वान् राजा-महाराजा विद्योत्तमा से विवाह करने के लिये शास्त्रार्थ करने आये किन्तु कोई भी विद्योत्तमा को पराजित नहीं कर सका। अन्त में विद्वानों ने सोचा कि इसका विवाह एक ऐसे महामूर्ख से करा दिया जाये जिससे यह अपने जीवनभर पश्चाताप करती रहे। विद्वान युक्तिपूर्वक विचार करके जंगल में निकल पड़े। जंगल में उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति जिस पेड़ की डाल पर बैठा है उसी को कुल्हाड़ी से मारकर काट रहा है। विद्वानों ने सोचा कि इससे बढ़कर मूर्ख दूसरा कोई नहीं होगा। उन्होंने कालिदास को नीचे बुलाया। उनको पीले वस्त्र पहनाकर समझाया कि तुम्हारा विवाह एक सुन्दर कन्या से हम लोग करवा देंगे। किन्तु वहाँ चलकर तुम मौनव्रत रखना। जो कुछ कहना वह संकेतों से हाथ के द्वारा कहना। कालिदास विद्वानों की बात मानकर विद्योत्तमा के दरबार में गये। शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। विद्वानों ने विद्योत्तमा से कहा कि कालिदास आजकल मौनव्रत धारण किये हुये हैं; अतः आपको जो कुछ प्रश्न करना है उसे संकेतों से पूछिये। विद्योत्तमा ने इस पर कालिदास की ओर मुख करके एक अंगुली

उठायी। कालिदास ने सोचा कि यह औरत मेरी एक आँख फोड़ने का संकेत कर रही है अतः उन्होंने दो अंगुली उठाकर दोनों आँखें फोड़ने का संकेत किया। पास में बैठे विद्वानों ने कहा-राजकुमारी ! आपने कहा ईश्वर एक है। कालिदास कहते हैं कि नहीं। ईश्वर दो हैं एक आत्मा और दूसरा परमात्मा। इस पर विद्योत्तमा ने दूसरा प्रश्न करते हुए अपनी पाँचों उंगलियों को उठाया। कालिदास ने सोचा कि यह मुझे एक झापड़ मारने का संकेत कर रही है इसलिये उन्होंने मुट्ठी बाँधते हुए मारने का संकेत दिया। पास में स्थित विद्वानों ने इसका यह अर्थ लगाया कि राजकुमारी! आपने कहा कि पृथ्वी पर ५ तत्व हैं— क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर। कालिदास जी कहते हैं कि इन पाँचों तत्वों के संयोग से इस मानव शरीर का निर्माण हुआ है। विद्योत्तमा को अन्त में अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। कालिदास के गले में जयमाल पड़ी। दोनों का विवाह हो गया। रात में जब दोनों शयनगृह में गये तो कहीं से एक ऊंट चिल्ला पड़ा। विद्योत्तमा ने कालिदास से पूछा-यह किसकी आवाज है। कालिदास ने उत्तर दिया उंट्र। पुनः विद्योत्तमा ने पूछा कैसी आवाज है। कालिदास ने पुनः ऊंट्र कहा। विद्योत्तमा को विद्वानों की गहरी साजिश एवं षड्यन्त्र का पता लग गया। उसने कालिदास को मकान की तीसरी मंजिल से नीचे फेंक दिया। वे नीचे भगवती काली की प्रतिमा के ऊपर जा गिरे। अपनी स्त्री से अपमानित होकर कालिदास ने भगवती काली की बड़ी उपासना की। काली की प्रसन्नता और आशीर्वाद से ही कालिदास शास्त्रों के ज्ञाता हो गये। अनेक वर्षों के बाद जब वे अपने घर आये तो दरवाजा खुलवाने के अभिप्राय से उन्होंने कहा-"अनावृत कपाटं द्वार धेहि।" भीतर से विद्योत्तमा ने कहा—अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः। कालिदास ने कहा-सोऽहं कालिदासः। इसके बाद विद्योत्तमा को एक विद्वान्, ज्ञानी, मनीषी कालिदास को पाकर अत्यधिक आनन्द का अनुभव हुआ। वह कालिदास के पैर पर गिर पड़ी और उनका चरण प्रक्षालन आदि किया। कालिदास ने स्त्री के मुख से निकले तीन शब्दों पर तीन काव्यग्रन्थ रच डाले। अस्ति शब्द से प्रारंभ करके कुमारसम्भव महाकाव्य, कश्चित् शब्द से प्रारंभ करके मेघदूत खण्ड काव्य और वाग् शब्द से प्रारंभ करके रघुवंशम् महाकाव्य की रचना कर डाली।

अन्त में चलकर वही कालिदास विद्वान बनकर संस्कृत साहित्य की एक अमूल्य निधि हो गये। कालिदास के बिना संस्कृत साहित्य का अध्ययन हो ही नहीं सकता। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान कवि गेटे भी कालिदास के शाकुन्तलम् के अनुवाद को पढ़कर आनन्द वेग से पागल हो गये और उन्होंने इस ग्रन्थ की विलक्षण प्रशंसा की है।

कालिदास की रचनायें —(१) कुमारसम्भव (महाकाव्य) (२) मेघदूत (खण्डकाव्य) (३) रघुवंश (महाकाव्य) (४) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (नाटक) (५) विक्रमोर्वशीय (६) मालविकाग्निमित्र (७) ऋतुसंहार।

कालिदास की नाट्यकला

महाकवि कालिदास ने तीन नाटक लिखे। मालविकाग्निामित्र, विक्रमोर्वशीय एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम्। इनके पूर्ववर्ती भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि अनेक नाटककार प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे, तथापि कालिदास में इतना आत्म-विश्वास था कि उन कवियों के नाटकों में जो बातें नहीं पाई जाती हैं, वे उपरोक्त तीनों नाटकों में मिल जाती हैं। इसीलिये वे मालविकाग्निमित्र में कहते हैं—

''पुराणमित्येव न साधु सर्वम्, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्''।

कालिदास का सर्वाधिक प्रसिद्ध तीसरा नाटक सर्वांगसुन्दर, उपदेशों से परिपूर्ण, मानवीय संवेदनाओं और स्वभाव को प्रदर्शित करने वाला, सभी देशों और कालानुरूप कमनीय, अभिनय कलापूर्ण कृति अभिज्ञानशाकुन्तलम् के रूप में प्रकट हुआ और उसने नाट्य जगत में सदा सर्वदा के लिये अपना एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। यूरोपीय भाषा में इसके अनुवाद को पढ़कर यूरोप के प्रसिद्ध कवि गेटे ने इस पर लट्टू होकर भाव विभोर और आनन्दातिरेक के साथ इस कृति का अभिनन्दन किया था। विद्वानों में यह श्लोक प्रसिद्ध ही है—

काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला।

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः, तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

काव्य के प्रकारों में नाटक सर्वाधिक सुन्दर होता है। प्रसिद्ध नाटकों मे अभिज्ञान- शाकुन्तल का मूर्धन्य स्थान है। उसमें भी चतुर्थ अङ्क और उसमें भी चार श्लोक अपनी अनुपम मनोहरता को लिये हुए हैं।

उपमा की अपूर्वता, अलंकारों की रमणीयता, छन्दों की छटा तथा सुमधु भाव प्रकाशन से कालिदास की नाट्यकला की कमनीयता अपनी कोई सानी नहीं रखती। कवि गेटे के भावों का अनुवाद संस्कृत के ज्ञानी पण्डितों ने इस प्रकार से किया है—

''वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत्,
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूत पूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयोः
ऐश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे! शाकुन्तलं सेव्यताम्॥

इस अनुवाद से पाश्चात्य जगत ने यह समझा कि भारतीयों की संस्कृति बड़ी ऊँची है। उनमें हृदय के कोमल भावों को छूने की अद्भुत क्षमता है।

भारतीय ऋषियों के द्वारा प्रचारित चिरन्तन तथ्यों को एवं मूल प्रकृति को नयनाभिराम, लोकाभिराम शब्दों में भारतीय जनता के हृदय में उतारने का कार्य कालिदास के नाटकों ने किया है।

शकुन्तला का जन्म स्वर्गीय अप्सरा मेनका के गर्भ से और उन विश्वामित्र ऋषि से हुआ, जिनके भयंकर तप से स्वर्ग के स्वामी देवराज इन्द्र इतने डर ग कि उन्होंने ऋषि को लुभाने और उनकी तपस्या भंग करने के लिये मेनका को नीचे मर्त्यलोक में भेजा। कन्या के उत्पन्न होते ही माता उसे वन में छोड़कर स्वर्ग लौट जाती है। इस प्रकार आरक्षित अनाथ छोड़ी हुई बालिका की देखभाल वन के पक्षी करते हैं। वे उसका तब तक पोषण करते हैं, जब तक कण्व ऋषि आकर उसे उठा नहीं ले जाते। वे उसका नाम शकुन्तला (पक्षियों द्वारा पोषित) रख देते हैं और उसे अपनी पालिता कन्या बना लेते हैं।

कण्व ने अपनी पालिता के लिये बाल सखियों के रूप में अनुसूया और प्रियंवदा नाम की दो सखियाँ भी दे दीं जिनके नाम ही सुविहित रूप से उनभर भिन्न स्वभावों की सूचना देते हैं। इतना ही नहीं, उसके लिये कण्व ने माधव

अतिमुक्तक और सबसे अधिक शकुन्तला की बहन नवमालिका भी दे दी थी, जिसका उसने प्रेम से वनज्योत्स्ना नाम रख दिया था। अत्यन्त भावुकता से विह्वल होकर कण्व वर्णन करते हैं कि शकुन्तला किस प्रकार अनाथ मृगशावकों का पालन-पोषण किया करती थी—

"यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां,
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टि परिवर्धितको जहाति,
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते॥

कालिदास के नाटकों में विचारपूर्ण घटना-संयोजन की असाधारण कुशलता, वर्णनों की सार्थकता, स्वाभाविक रचना कौशल, अति सरस कथानक के साथ ही ध्वनि और व्यंजना का मुख्य स्थान है। चरित्र चित्रण में पात्रों का विशिष्ट व्यक्तित्व समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व तथा सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना अभिज्ञानशाकुन्तलम् की अनुपम देन है। पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। कालिदास ने अपने नाटकों में नाट्यशिल्प कला के साथ अपनी अद्भुत कवित्व शक्ति का समन्वय करके नाटकों को चिरस्थायी बना दिया है। ५ अर्थ प्रकृतियाँ, ५ अवस्थायें तथा ५ सन्धियों को सुन्दर रूप में शाकुन्तल में रखा गया है।

आजकल की समर ज्वाला में दग्ध होने वाले संसार के लिये कालिदास के नाटक विशेष रूप से उपादेय हैं। कालिदास की सम्मति में तपोवन की गोद में पली हुई शकुन्तला सम्पूर्ण मानव जाति का सच्चा कल्याण कर सकती है। जिसने हमारे देश को भारतवर्ष जैसा मंजुल नाम प्रदान किया उस दौष्यन्ति भरत का जन्म मारीचि के आश्रम में हुआ। अभिज्ञान शाकुन्तलम् की प्रकृति विषमता दूर कर समता के अभ्यास में निरत रहकर निखिल मानवता को नैसर्गिक शान्ति तथा मैत्री भाव से रहना सिखाती है। कालिदास के नाटकों में सजीवता, रमणीयता, स्वाभाविकता, प्राण स्पन्दन, प्रीति की खींच तथा प्रसाद गुण विद्यमान है।

आज शकुन्तला विदा होगी, यह सुनकर महर्षि कण्व का हृदय दुःख से भर गया है। अश्रुपूरित नेत्र तथा दृष्टि चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो गयी है।

महर्षि कण्व की संवेदनशीलता और अनुभूति कहती है कि जंगल में रहने वाले मुझको शकुन्तला के प्रति स्नेह के कारण जब इतना दुःख हो रहा है तो गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग से कितने अधिक दुःखी होते होंगे—

"यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठः स्तम्भित वाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः॥"

जिस अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक में तपोवन में ऋषि कण्व द्वारा पालित शकुन्तला आश्रम तरुओं को सींचती हुई हमारे सम्मुख आती है उसके चरम प्रकृति प्रेम का प्रभाव यह होता है कि तपोवन के समस्त जड़ चेतन उसके ऐसे अनन्य अनुरागी हो जाते हैं कि उसकी विदाई के समय वहाँ के वन देवताओं और तरुलताओं ने अलौकिक वस्त्राभूषणादि तक उसके लिये उपहार में प्रदान कर डाले। धर्मपिता कण्व के कथनानुसार जो शकुन्तला तरुलतादि को बिना सींचे जल पीना भी उचित नहीं समझती थी उस शकुन्तला की विदाई के समय समस्त तपोवन विरहाकुल हो उठता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या—

उद्गलित दर्भकवलया मृग्यः, परित्यक्तनर्तनामयूराः।
अपसृत पाण्डुपत्रा, मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥

जब शकुन्तला की विदाई का समय आता है तो सम्पूर्ण प्रकृति निर्निमेष भाव से शोभा के इस अपार समुद्र को देखकर थकती नहीं। कालिदास जैसे इस वियोग संगीत को गाते हुए रुकना ही नहीं जानते। प्रेम के इस साफ और परिमार्जित रूप का चित्रण विश्व साहित्य में किसी दूसरे नाटककार ने नहीं किया है। यह महाकवि कालिदास की नाट्य कला की विशिष्टता को दर्शाता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु

प्रथम अंक

नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करता है और महाराज़ दुष्यन्त का उल्लेख करता है। आश्रम के मृग का पीछा करते हुए महाराज दुष्यन्त का सारथि के साथ प्रवेश। राजा मृग को मारना ही चाहता है कि इतने में एक तपस्वी का प्रवेश। तपस्वी आश्रम के मृग को मारने से राजा को मना करता है। राजा कहना मान लेता है। तपस्वी राजा को पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देता है और राजा से प्रार्थना करता है कि आश्रम में जाकर अतिथि सत्कार स्वीकार करें। कुलपति कण्व सोमतीर्थ गये हैं। शकुन्तला अतिथि सत्कार का काम करती है। राजा आश्रम में वृक्षों में जल डालती हुई तीन अति सुन्दर कन्याओं को देखता हैं उनमें से एक शकुन्तला है। राजा उस पर आसक्त हो जाता है। एक भौंरा शकुन्तला को तंग करता है। वह रक्षा की प्रार्थना करती है। राजा जो अब तक वृक्ष की ओट में छिपा हुआ था, सामने आता है। उन तीनों से वार्तालाप करता है। बातचीत से शकुन्तला के विषय में जानकारी मिलती है। राजा उससे विवाह करने का निश्चय करता है। वह अपने राजत्व को प्रकट नहीं करता। इसी बीच आश्रम में एक विक्षुब्ध हाथी का प्रवेश। राजा पर आसक्त शकुन्तला का प्रियंवदा और अनसूया नामक अपनी दोनों सखियों के साथ प्रस्थान।

द्वितीय अङ्क

शकुन्तला पर आसक्त राजा का कामी की अवस्था में प्रवेश। शिकार खेलने से तंग आये हुए विदूषक का अपने विचार प्रकट करना। राजा शिकार खेलने का विचार छोड़ता है। वह विदूषक को सूचित करता है कि वह शकुन्तला पर आसक्त है। भाग्यवश दो ऋषि कुमारों का प्रवेश और उनकी राजा से प्रार्थना कि राक्षसों से यज्ञ के रक्षार्थ वे कुछ समय आश्रम में रुकें। राजा की स्वीकृति। राजधानी से दूत का आगमन और माता द्वारा राजा को बुलाया जाना। राजा को अपनी जगह विदूषक को सेना के साथ राजधानी भेजना। विदूषक राजधानी में रानियों को यह घटना न बतावे। अतः राजा का उसको कहना कि यह शकुन्तला से प्रेम की सब बातें केवल हँसी मात्र हैं, वास्तविक नहीं।

तृतीय अङ्क

शकुन्तला भी दुष्यन्त पर आसक्ति के कारण अस्वस्थ है। वह फूलों की शय्या पर लेटी हुई है। काम पीड़ित अवस्था में राजा का प्रवेश। पेड़ों की ओट से छिपकर उसका शकुन्तला और उसकी सखियों की बात को सुनना।

शकुन्तला का स्वीकार करना कि वह दुष्यन्त से प्रेम करती है, और उनसे विवाह के बिना जीवित नहीं रह सकती। अवसर पाकर राजा का सामने आना और शकुन्तला के प्रति अपने प्रेम की घोषणा करना। राजा और शकुन्तला को छोड़कर दोनों सखियों का प्रस्थान। राजा के द्वारा गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव। शकुन्तला की आनाकानी। शान्ति जल लेकर आश्रम की स्वामिनी गौतमी का प्रवेश। राजा का वृक्ष की ओट में छिपना। गौतमी का शकुन्तला को लेकर जाना। यज्ञ में राक्षसों के विघ्न को दूर करने के लिये राजा का प्रस्थान।

चतुर्थ अङ्क

महाराज दुष्यन्त का तपोवनवासिनी शकुन्तला से गान्धर्व विवाह। राजा का अपनी राजधानी के लिये प्रस्थान के समय शीघ्र ही शकुन्तला को लिवा जाने के लिये योग्य व्यक्ति को भेजने का आश्वासन। राजा का प्रस्थान। शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न कुटी में बैठी है। दुर्वासा ऋषि का अतिथि के रूप में आगमन। उनका आतिथ्य न करने पर क्रुद्ध ऋषि द्वारा शकुन्तला को शाप कि "जिसको स्मरण करती हुई तू मुझ आये हुए तपस्वी की ओर ध्यान नहीं दे रही है वह याद दिलाने पर भी तुझे नहीं पहचानेगा।" प्रियंवदा का ऋषि को मनाना और दुर्वासा का आश्वासन कि पहचान का कोई आभूषण दिखाने पर शाप का प्रभाव समाप्त हो जायेगा। प्रियंवदा और अनसूया दुर्वासा के शाप की बात न शकुन्तला को बताती हैं और न अन्य किसी को। वे समझती हैं कि राजा की अँगूठी शकुन्तला के पास है इसलिये राजा शकुन्तला को पहचान लेगा। और शाप का प्रभाव समाप्त हो जायेगा। यहाँ पर विष्कम्भक समाप्त होता है।

तीर्थयात्रा से लौटने पर ऋषि कण्व को आकाशवाणी द्वारा ज्ञात होता है कि शकुन्तला का विवाह गान्धर्व विधि से दुष्यन्त के साथ हुआ है और वह गर्भिणी है। ऋषि इस विवाह का समर्थन करते हैं। दुर्वासा के शाप के कारण राजा शकुन्तला को सर्वथा भूल जाते हैं। उसे लिवाने के लिये किसी व्यक्ति को वे नहीं भेजते हैं। शकुन्तला के गर्भ चिन्ह प्रकट हैं अतः उसे राजा के पास भेजने का प्रबन्ध किया जाता है। शकुन्तला के विदाई की तैयारी होती है। वनवृक्षों द्वारा आभूषणों और रेशमी वस्त्रादि प्राप्त होते हैं। शकुन्तला अपनी सखियों, वनमृगों आदि से विदाई लेती है। यहाँ पर वियोग का अत्यन्त मार्मिक, हृदयाकर्षक वर्णन हुआ है। ऋषि कण्व शकुन्तला को कर्त्तव्य की शिक्षा देते हैं और राजा के लिये सन्देश देते हैं। शकुन्तला का कण्व ऋषि से करुणापूर्ण मिलन और बिदाई। शकुन्तला के साथ गौतमी और दो तपस्वियों का प्रस्थान। शकुन्तला को पति के पास भेजकर महर्षि कण्व को हार्दिक शान्ति प्राप्त होती है।

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

१. दुष्यन्त

१. परिचय—महाराज दुष्यन्त हस्तिनापुर के राजा हैं। वे एक महान पराक्रमी, गम्भीर, क्षमावान, अहंकार रहित, दृढ़निश्चयी क्षत्रिय हैं। वे पुरुवंश के हैं। वे कर्त्तव्य परायण, प्रजाजन के रक्षक, सहृदयी, संयमी, निर्भीक और उच्चकोटि के शासक हैं। धीरोदात्त नायक के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं।

२. दर्शनीय आकृति—महाराज दुष्यन्त सुन्दर रूपवान, बलवान शरीर वाले ३०-३५ वर्ष की आयु के युवा सम्राट हैं। वे परिश्रमी और आखेट के प्रेमी हैं। धनुष की टंकार से ही वे यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों को भगा देते हैं। उनका शारीरिक गठन बहुत ही सुन्दर और हृष्ट पुष्ट है।

३. मधुरभाषी—महाराज दुष्यन्त विनम्र स्वभाव के मधुरभाषी एक आदर्श राजा हैं। प्रियंवदा उनके मधुर सम्भाषण की प्रशंसा करती है। उनमें भावुकता, कोमलता, दूरदर्शिता और आश्रम के ऋषियों के प्रति बहुत आदरभाव है। उनके विचार उत्तम और सन्तुलित हैं। परस्त्री को देखना पाप समझते हैं। शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला को न पहचानने से उसकी ओर ध्यानपूर्वक नहीं देखते।

४. शिकार प्रेमी—महाराज दुष्यन्त शिकार करने के बहुत ही प्रेमी दिखायी देते हैं। वे जंगल में शिकार करने गये थे। हिरणी की जगह बनवाला का शिकार किया था। वे धनुष की टंकार से ही यज्ञ में विघ्न करने वाल राक्षसों को भगा देते हैं। दानवों के वध के लिये इन्द्र उन्हें स्वर्ग में बुलाते हैं। उन्हें जब तक यह निश्चय नहीं हो जाता कि शकुन्तला क्षत्रिय कन्या है, तब तक वे अपने विवाह का विचार प्रगट नहीं करते।

५. ऋषियों के प्रति आदरभाव—महाराज दुष्यन्त के हृदय में ऋषियों के प्रति बहुत आदरभाव है। वे तपस्वी के कहने मात्र से मृग पर बाण नहीं चलाते। विनीत वेश में आश्रम में प्रवेश करते हैं। यज्ञ की रक्षा के लिये ऋषियों की प्रार्थना सादर स्वीकार करते हैं। आश्रम के भीतर प्रवेश करके मर्यादित अनुशासित व्यवहार का परिचय देते हैं।

६. उच्चकोटि के पति और आदर्श प्रेमी—महाराज दुष्यन्त एक उच्चकोटि के शासक ही नहीं वरन् सुन्दर सभी गुणों से युक्त पति भी हैं। उनमें प्रसाद गुण विद्यमान है। प्रीति की खींच है। शकुन्तला के प्रति सहज आकर्षण का भाव है। शकुन्तला की बिगड़ी हुई दशा को देखकर वे तत्काल उसके साथ पाणिग्रहण और रक्षा करने की स्वीकृति दे देते हैं। प्रेम परिचय को पहचान बना देता है। शिकार की भावना वीरान जंगल को गुलिश्तान बना देती है। दुष्यन्त का प्रेमी मन शकुन्तला के प्रति समर्पित भाव से काम करता है। वे किसी भी प्रकार से शकुन्तला को दुःखी नहीं देखना चाहते हैं।

७. सहृदयी—महाराज दुष्यन्त सरस, सुकोमल; दयावान, संयमी होते हुए सहृदयी हैं। मारीच ऋषि के दर्शन के लिये वे स्वयं विनीत वेश में आश्रम में पहुँचते हैं। शाप का प्रभाव समाप्त होते ही वे शकुन्तला के प्रति अपनी हार्दिक पीड़ा को व्यक्त करते हैं। वे उसके सौन्दर्य का बोध होने पर भी मुग्ध नहीं होते हैं। उन्हें धन का लोभ नहीं है। प्रेम के लिये उनके पास हृदय है। हृदय में प्रेम करने की उत्कट भावना है। भावना से बड़ी दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। उच्च कोटि की प्रेमी भावना, कल्पना की उड़ान, तथा मानवता के गुणों की सफल अभिव्यक्ति महाराज दुष्यन्त के भीतर पूर्णरूप से निहित है।

८. उच्चकोटि के शासक—महाराज दुष्यन्त एक युवा प्रेमी ही नहीं, वे एक उच्चकोटि के युवा सम्राट और प्रजाजन के रक्षक सफल शासक भी हैं। वे सुन्दरवंश में पैदा हुए हैं। उनमें क्षत्रियत्व है। साहसी और निर्भीक विचारक हैं। उनके विचार प्रजाजन की रक्षा हेतु कल्याणकारी और सन्तुलित हैं। वे प्रजा प्रेमी हैं। आश्रम में राक्षसों द्वारा विघ्न उपस्थित करने पर वे उनका दमन कर आश्रमवासियों के जीवन की रक्षा करते हैं। साहस और शक्ति की दृढ़ प्रतिमा हैं। नीरसभूमि खण्ड आश्रम के अमृतस्रोत हैं। शृंगार प्रेमी होते हुए भी विवेकी, शीलवान तथा दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। उनमें प्रजा के प्रति सेवक-सेव्य का भाव विद्यमान है।

२. शकुन्तला

१. परिचय—शकुन्तला विश्वामित्र की पुत्री और मेनका के गर्भ से उत्पन्न कन्या है। अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की नायिका है। महर्षि काश्यप के आश्रम में पालन पोषण होने के कारण महर्षि काश्यप शकुन्तला के धर्मपिता हुए। विश्वामित्र का तप भंग करने के लिये इन्द्र ने मेनका नाम की अप्सरा को

उनके पास भेजा था। मेनका के द्वारा उनका तप भंग हुआ और दोनों के सम्पर्क से शकुन्तला का जन्म हुआ। दोनों ने उसको छोड़ दिया।

२. नामकरण—माता-पिता के द्वारा शैशवकाल में ही शकुन्तला को छोड़ दिया गया। कुछ समय तक शकुन्तों (पक्षी विशेष) ने उसका पालन पोषण किया। अतः पक्षियों के द्वारा वन में उसका पालन पोषण होने के कारण ही शकुन्तला नाम पड़ा। जैसा कि शकुन्तला नाम से ही ज्ञात हो जाता है।

३. अनुपम कन्या—शकुन्तला १८ वर्ष की एक अनुपम सुन्दरी कन्या है। उसका सौन्दर्य नैसर्गिक है। उसके अंगों में असाधारण लावण्य है। उसमें यौवनावस्था के चिह्न स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगे हैं। आश्रम में ऋषि कण्व द्वारा पालित शकुन्तला में प्रेम भावना के प्रति सहज आकर्षण, सरलता, मुग्धता, दिव्यता और ऋषियों के प्रति अगाध श्रद्धा है।

४. प्रेमी हृदय—शकुन्तला को एक सुन्दर प्रेमी हृदय प्राप्त है। वह सुशील, लज्जाशील, प्रकृति प्रेमी और पति प्रेमी भी है। राजा दुष्यन्त को प्रथम दर्शन में ही देखते उसके अन्दर कामुकता की भावना जाग्रत हो जाती है किन्तु वह उसे व्यक्त नहीं करती। प्रेम करने के लिये उसके पास हृदय है, भाव है, सुकुमार कल्पनायें हैं। अपने विचारों को सार्थक स्वरूप देने के लिये वह अपनी सुध बुध प्रेमी मिलन की आस में खो बैठती है।

५. पतिभक्तपरायणा—कालिदास ने शकुन्तला को एक पतिभक्तपरायणा आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। उसके भीतर पति के प्रति आदर भाव है। प्रेम है। खिंचाव है। शृंगार सुलभ चेष्टायें हैं। पति के वियोग में वह अत्यन्त व्याकुल और अन्यमनस्क सी दिखायी देती है। वह दुष्यन्त के सुन्दर रूप और लावण्य पर आसक्त है। वह कहती है—नये नये मधु के लोभी ऐ मधुकर! एकबार ही इस रसाल की मधुर मंजरी चूम गये तुम।

क्यों निवास कर कमल कोष में, मुझेभूल कर घूम गये तुम॥ यही कारण है कि तपोवन में महर्षि दुर्वासा के प्रवेश करने पर वह पति के प्रेम में मग्न उनका समुचित आदर सत्कार नहीं कर पाती है, और दुर्वासा के कोपभाजन का शिकार बन जाती है।

६. सखियों के प्रति अनुराग—शकुन्तला की अनसूया और प्रियंवदा नाम की दो सखियाँ हैं। उनमें सखी भाव के सभी गुण विद्यमान हैं। संकट काल में

दोनों सखियाँ अपनी दक्षता, कुशलता और विवेकशीलता का पूर्ण परिचय देती हैं। शकुन्तला के हृदय में अपनी सखियों के प्रति अत्यधिक स्नेह है। असीमित अनुराग है। अपने पति के घर जाते समय वह उनसे बार-बार मिलती है। वियोग की आशंका से वह अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी सखियों से भेंट करती है। सखियों के वियोग का अनुभव करती हुई वह विचार व्यक्त करती है कि अब मेरा शृंगार दुर्लभ हो जायेगा। मेरा शृंगार कौन करेगा। मेरी बुद्धि के कुंठित हो जाने पर मेरा उचित मार्गदर्शन कौन करेगा।

७. प्रकृति प्रेमी—प्रकृति के प्रति उसका असीम अनुराग है। वह प्रकृति की गोद में पली है। प्रकृति ने भी उसको अपना बनाया है। प्रातःकाल बिना वृक्षों को सींचे हुए वह जल नहीं पीती है। शृंगारप्रेमी होने के बाद भी वह वृक्षों से लता पुष्प आदि नहीं तोड़ती है। वृक्षों में पहली बार पुष्प खिलने पर वह उनका उत्सव मनाती है। वन के समस्त उपवन, वाटिकायें, पेड़-पौधे, लता-पुष्प आदि उसे बहुत प्रिय हैं। वह प्रतिदिन प्रकृति का शृंगार करती है और प्रकृति उसका शृंगार करके अपने चेतन स्वरूद्ध का परिचय देती है। संसार में कौन ऐसा पाषाण हृदय प्राणी होगा जिसकी आँखों से प्रकृति और नारी के इस अनूठे प्रेम को सुनकर आँसू न गिरे।

८. पितृभक्त नारी—शकुन्तला अपने धर्म पिता महर्षि काश्यप से अत्यधिक अनुराग रखती है। पिता के प्रति उसके हृदय में सच्ची श्रद्धा है, भक्ति है, अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरुकता है। यही कारण है कि शकुन्तला अपने पिता के घर से जब पति के घर जाने लगती है तो अत्यधिक वियोग की आंशका उसके हृदय को द्रवीभूत बना देती है और वह विदायी के समय सजल नेत्रों से आश्रम की ओर देखती हुई पिता से प्रश्न कर बैठती है कि मैं पुनः इस तपोवन को कब देख सकूँगी। वह बारबार अपने पिता से मिलकर करुण क्रन्दन करती है और पिता के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा भावना प्रगट करती है। मानवीय संवेदनाओं और जीवन की बारीकियों का उसे खूब अध्ययन है। कालिदास ने शकुन्तला को एक अत्यन्त सुशील, लज्जाशील, प्रकृतिप्रेमी और पतिभक्तपरायणा आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है।

शकुन्तला तो सारे संस्कृत साहित्य की एक अनुपम मिसाल है। कालिदास ने उसमें एक आदर्श लज्जाशील नारी के स्वरूप को ही नहीं चित्रित किया वरन् उसके निश्छल जीवन में प्रेम के साफ और परिमार्जित रूप का चित्र

भी किया है। शकुन्तला नारी जगत की एक आदर्श प्रतिमा और प्रेम के मार्मिक स्वरूप की सफल अभिव्यक्ति है।

३. काश्यप

१. परिचय—ऋषि कण्व आश्रम के कुलपति और अग्निहोत्र करने वाले नैष्ठिक ब्राह्मण हैं। इनका दूसरा नाम काश्यप है। इनका तपोबल असाधारण है। वे वर्तमान, भूत और भविष्यत् के ज्ञाता हैं। उनके तप के प्रभाव से राक्षस यज्ञ में विघ्न नहीं करते हैं। वे आश्रम एवं तपोवन के अधिष्ठाता और शकुन्तला को पालन करने वाले धर्म पिता हैं।

२. महान तपस्वी—महर्षि काश्यप एक महान ज्योतिर्विद, साधक तथा कर्मयोगी सिद्धपुरुष हैं। अपनी सिद्धि और तपोबल के प्रभाव से ही उन्होंने आश्रम के जड़ वृक्षों, पौधों और लताओं को सचेतन प्राणी के समान व्यवहार करने वाला बना दिया है। शकुन्तला की विदायी के अवसर पर आश्रम के वृक्ष इनके तपोबल के प्रभाव से ही लता, गुल्म, पुष्प सहित अनेक आभूषण शकुन्तला को प्रदान करते हैं। शकुन्तला पर विपत्ति आने पर वे उसके निवारणार्थ सोमतीर्थ जाते हैं। आकाशवाणी से उन्हें ज्ञात होता है कि शकुन्तला को दुष्यन्त से गर्भ रहा है।

३. वात्सल्य के धनी—ऋषि कण्व परित्यक्ता शकुन्तला का अपनी पुत्री के समान पालन-पोषण करते हैं। उनका प्रेम निःस्वार्थ है। वे शकुन्तला को अपने जीवन का सर्वस्व समझते हैं। शकुन्तला की विदायी के समय वे सगे माता-पिता के समान व्याकुल होते हैं। उनका गला रुँध जाता है। आँखों से आसुओं की बरसात होने लगती है। शकुन्तला के जाने पर वे बहुत खिन्न हैं। कालिदास ने शकुन्तला के चरित्र का वर्णन करने में ऋषि कण्व के अनूठे वात्सल्य की जो रसधारा प्रवाहित की है उसमें पाषाण को भी द्रवीभूत करने की अप्रतिम शक्ति है। ऋषि कण्व का शकुन्तला पर निःस्वार्थ प्रेम आदर्श अलौकिक प्रेम का मूर्तस्वरूप है।

४. लौकिक व्यवहार के ज्ञाता—कण्व ऋषि होते हुए भी लौकिक व्यवहार को अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने शकुन्तला को जो उपदेश दिया है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। वे शकुन्तला के साथ अनसूया और प्रियंवदा को नहीं भेजते, क्योंकि उनका भी विवाह करना है। कुमारी युवतियों को

नहीं हैं तथापि उस राजा ने शकुन्तला के साथ अशिष्ट व्यवहार किया है।" उपरोक्त वाक्य से उसके साहसपूर्ण बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है।

६. गम्भीर एवं मितभाषिणी—अनुसूया प्रत्येक परिस्थिति में अपने विषय के प्रति गम्भीर है। उसमें छल कपट लेशमात्र भी नहीं है। वह आवश्यकता पड़ने पर ही अपना मुख खोलती है। शान्त स्वभाव, दूरदर्शी, विचारशील होने के साथ वह दुष्यन्त और शकुन्तला के मध्य प्रेम सम्बन्धों के प्रति भी गम्भीर है।

७. अतिथि सत्कार में कुशल—अनुसूया अभ्यागत का स्वागत सत्कार करने में परम निपुण है। आसन, अर्घ्यादि सामग्री के साथ अतिथि का सम्मान भारतीय प्राचीन परम्परा का द्योतक है। राजा दुष्यन्त का स्वागत करने के लिये वह सखी शकुन्तला से कहती है कि कुटी के भीतर जाओ और फलयुक्त सामग्री ले आओ। वह यह भी कहती है कि सखी शकुन्तला, यह हमारे लिये उचित है कि अतिथि के पास बैठें। और विशिष्ट अतिथि को बिना सत्कार किये छोड़कर चला जाना उचित नहीं।

इस प्रकार अनुसूया आदर्श गुणों वाली अनुपम सुन्दरी, सच्ची सहेली अर्थात् अन्तरंग सखी, उदार हृदया, कोमल स्वभाववाली अतुलनीय भारतीय नारी है।

५. प्रियंवदा

१. परिचय—प्रियंवदा शकुन्तला की अभिन्न हृदया अन्तरंग प्रिय सखी है। वह अविवाहित नवयौवना है। शकुन्तला की भाँति सुन्दर और समवयस्क है। उसे अपनी सखी शकुन्तला के कल्याण की सदैव चिन्ता रहती है। सम्पूर्ण तपोवन में वह अत्यन्त कर्त्तव्यशील, धर्मपरायण, मधुरभाषी के रूप में दिखायी देती है।

२. सच्ची सखी—प्रियंवदा को शकुन्तला से आत्मीय प्रेम है। उसका प्रेम सम्बन्ध प्रगाढ़ है। वह एक सच्ची सखी की भूमिका अदा करती है। प्रत्येक कर्त्तव्य के अवसर पर शकुन्तला की सुख-शान्ति के लिये और उसके उज्ज्वल भविष्य के लिये वह सचेष्ट रहती है। संगति का प्रभाव भी महान् होता है। वह जिज्ञासु है। परिणाम चाहती है। अपने प्रयास का फल चाहती है।

३. व्यवहार कुशल—प्रियंवदा चरित्रवान्, विनयसम्पन्न और व्यवहार कुशल है। विविध विषयों में पारंगत है। वृक्षों, फूलों, पादपों और लताओं से

सुशोभित तपोवन में प्रत्येक अभ्यागत का यथोचित सम्मान करती है। उसकी व्यवहार कुशलता अनुपम है। अपनी सखी के हित में कार्य करती हुई वह अपने को धन्य मानती है। वह शकुन्तला की भलाई के लिये कटिबद्ध है, आश्वस्त है और शकुन्तला के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती रहती है। उसे राजा दुष्यन्त के प्रति शंका नहीं होती। व्यावहारिक शिष्टाचार, नम्रता एवं वाक्पटुता में वह कुशल है।

४. अत्यधिक भावुक—प्रिगंवदा कोमल स्वभाववाली, उदार और सरल हृदया तथा अत्यन्त भावुक चित्त की है। वह शकुन्तला के वियोगजन्य कष्ट से अत्यधिक संवेदनशील है। स्वयं दुःखी होने के साथ वह पूरे तपोवन के आश्रम के पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़ पौधों को दुःखी अवस्था में अनुभव करती है। भावुक जन से ही महत्कार्य होते हैं। लौकिक व्यवहार की सर्वज्ञ है। सभी के लिये आनन्ददायक है। मनोरंजनप्रिय है। उसके भावों की अभिव्यक्ति में रसमयता है, आकर्षण है, कला का विकास है।

५. विनोदप्रिय—प्रियंवदा मधुरभाषिणी और मनोविनोदप्रिय है। वह शकुन्तला का भरपूर मनोरंजन करती है। शकुन्तला की विदायी के अवसर पर प्रियंवदा कहती है—सखी, इस अनुग्रह से (वृक्षों के द्वारा आभूषण प्रदान करने पर) सूचित होता है कि तुम पति के घर में राजलक्ष्मी को अनुभव करोगी। इस पर शकुन्तला लज्जित हो जाती है। शकुन्तला दोनों सखियों से कहती है कि सखियो! इसको तुम दोनों के हाथ में धरोहर के रूप में छोड़ती हूँ। तब प्रियंवदा कहती है कि हम दोनों को किसके हाँथ में सौंपती हो। प्रियंवदा की भावाभिव्यक्ति में करुण रस की सुन्दर अभिव्यंजना है। शृंगार रस की उद्भावना है। रसों का सुन्दर परिपाक और मधुरता का सुन्दर समन्वय है। प्रियंवदा की वाचालता, वाक्पटुता से नाटक में पर्याप्त रोचकता आ गई है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अङ्क के नाटकीय पात्र

क्रम संख्या	नाम	परिचय
१	दुष्यन्त	हस्तिनापुर के राजा, नाटक के नायक
२	शकुन्तला	कण्व की पालिता धर्मपुत्री, नाटक की नायिका
३	कण्व (काश्यप)	शकुन्तला के पालक और धर्म पिता
		एक महर्षि। देवों और राक्षसों के पिता।
४	विदूषक (माधव्य)	
५	शार्ङ्गरव	कण्व के शिष्य
६	गौतमी	कण्व के आश्रम की अध्यक्षा
७	अनसूया	शकुन्तला की सखी
८	प्रियंवदा	शकुन्तला की सखी
९	दुर्वासा	ऋषि, शकुन्तला को शाप देने वाले मुनि
१०.	हारीत	कण्व के शिष्य
११.	तापस कुमार	कण्व के शिष्य
१२.	तापसियाँ	कण्व ऋषि के आश्रम में रहने वाली स्त्रियाँ

विशेष—सन्दर्भ के लिये निम्नलिखित वाक्य सम्पूर्ण पुस्तक के लिये एक सा रहेगा।

प्रस्तुत अवतरण/उद्धरण अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक से लिया गया है। इसके रचयिता महाकवि कालिदास हैं।

महाकविकालिदासप्रणीतम्
अभिज्ञानशाकुन्तलम्—चतुर्थोऽङ्कः (नाटक)

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।)

अनसूया—हला प्रियंवदे! यद्यपि गान्धर्वेण विवाहविधिनानिर्वृत्त-कल्याणा

शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति मे हृदयं, तथापि एतावच्चिन्त-नीयम्।

प्रियंवदा—कथमिव।

अनसूया—अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्यर्षिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुर समागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति।

प्रियंवदा—विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपस्यत इति।

अनसूया—यथाऽहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत्।

शब्दार्थ—कुसुमावचयं—पुष्प चुनने का। नाट्यन्त्यौ—अभिनय करती हुई। निर्वृत्त कल्याणा—कल्याण प्राप्त करने वाली। संवृत्ता—प्राप्त हो गई है। राजर्षिः—दुष्यन्तः। इष्टिपरिसमाप्य—यज्ञ की समाप्ति के बाद। विस्रब्धा—निश्चिन्त। प्रतिपस्यत—सोचेंगे। अनुमतं—स्वीकृति।

हिन्दी अनुवाद—(तत्पश्चात् पुष्प चुनने का अभिनय करती हुई दोनों सखियाँ प्रवेश करती हैं।)

अनसूया—सखी प्रियंवदा! यद्यपि गान्धर्व विवाह की विधि से विवाहित होकर कल्याण प्राप्त करने वाली शकुन्तला अनुकूल पति को प्राप्त हो गई है, फिर भी वह विचारणीय है।

प्रियंवदा—क्या।

अनसूया—आज वह राजर्षि यज्ञ की समाप्ति के बाद ऋषियों से विदाई पाकर अपने नगर में प्रविष्ट होकर अन्तःपुर में पहुंचकर यहाँ की बातों को स्मरण करेगा या नहीं।

प्रियंवदा—निश्चिन्त रहो। उस प्रकार की विशिष्ट आकृतियाँ गुणों से रहित नहीं होती हैं। पिता जी इस समय इस समाचार को सुनकर न जाने क्या सोचेंगे।

अनसूया—जैसा मैं समझती हूँ, वह उनको स्वीकृत ही होगा।

प्रियंवदा—कथमिव?

अनसूया—गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः।

प्रियंवदा—(पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि, अवचितानि बलिकर्म-पर्याप्तानि कुसुमानि।

अनसूया—ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया।

प्रियंवदा—युज्यते। (इति तदेव कर्माभिनयतः।)

(नेपथ्ये)

अयमहं भोः।

अनसूया—(कर्णं दत्वा) सखि! अतिथीनामिव निवेदितम्।

प्रियंवदा—ननु उटजे सन्निहिता शकुन्तला।

अनसूया—आम्! अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता। अलमेतावद्भिः कुसुमैः।

(इति प्रस्थिते)

शब्दार्थ—दैवमेव = भाग्य ही। अवचितानि = चुन लिये हैं। अर्चनीया = पूजा करनी है। युज्यते = ठीक है। तदैव = उसी। कर्माभिनयतः = कार्य का अभिनय करती है। उटजे = कुटी में। सन्निहिता = विद्यमान। आम् = हाँ।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—वह कैसे?

अनसूया—गुणवान व्यक्ति को कन्या देनी है, यह उनका प्रथम संकल्प है। यदि उसको भाग्य ही पूर्ण कर देता है, तो निश्चय ही गुरुजन बिना प्रयत्न के ही कृतार्थ हो गये।

प्रियंवदा—(फूलों की टोकरी की ओर देखकर) सखी, पूजा के कार्य के लिये पर्याप्त फूल चुन लिये गये हैं।

अनसूया—किन्तु सखी शकुन्तला के सौभाग्य देवता की भी पूजा करनी है।

प्रियंवदा—ठीक है। (ऐसा कहती हुई उसी कार्य का अभिनय करती है।)

(नेपथ्य में)

अरे यह मैं आया हूं।

अनसूया—(कान लगाकर) सखी! यह तो किसी अतिथि की बोली जान पड़ती है।

प्रियंवदा—कुटी में शकुन्तला विद्यमान है ही!

अनसूया—हाँ! परन्तु आज उसका हृदय कहीं और है। बस करो, इतने ही फूलों से काम चल जायेगा। (दोनों चल पड़ती हैं।)

(नेपथ्ये)

आः अतिथि परिभाविनि!

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा,
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्,
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ १ ॥

अन्वय १—अनन्यमानसा यं विचिन्तयन्ती उपस्थितम् तपोधनं मां न वेत्सि स प्रमत्तः प्रथमं कृताम् कथाम् इव बोधितः अपि सन् त्वां न स्मरिष्यति।

शब्दार्थ—परिभाविनि = अपमान करने वाली । अनन्यमानसा = एकाग्रचित्ता। तपोधनं = तपस्वी। वेत्सि = जानती। प्रमत्तः = उन्मत्त व्यक्ति। कृतामिव = की हुई बात का।

संस्कृत व्याख्या—अनन्यमानसा—एकाग्रचित्ता, ये—जनं, विचिन्तयन्ती—स्मरन्ती, उपस्थितम्—विद्यमानम्, तपोधनम्—तपस्विनम्, मां—दुर्वाससम्, न वेत्सि—न जानाति, स—जनः, प्रमत्तः- उन्मत्तः, प्रथमं-पूर्वम्, कृताम्- उक्ताम्, कथाम् इव— वार्तामिव, बोधितः अपि सन्- स्मारितः सन् अपि, त्वां—शकुन्तलाम्, न स्मरिष्यति— मम पत्नीत्येवं रूपेण नाभिज्ञास्यति। अत्र उपमा श्लेषश्चालंकारौ। वंशस्थ वृत्तम्।

हिन्दी अनुवाद— (नेपथ्य में)

ओह! अतिथि का अपमान करने वाली!

[यहाँ पर महर्षि दुर्वासा ने शकुन्तला को शाप दिया है।]

एकाग्रचित्त से जिसका स्मरण करती हुई तू मुझ तपस्वी की उपस्थिति नहीं जान पा रही है, वह तुम्हारे स्मरण कराने पर भी तुझे उसी प्रकार भूल जायेगा जैसे कोई उन्मत्त व्यक्ति पहले की हुई बात का स्मरण नहीं करता।

प्रियंवदा—हा धिक्, हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगवल्लोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः।

अनसूया—कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। गच्छ। पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि।

प्रियंवदा—तथा। (इति निष्क्रान्ता।)

अनसूया—(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो, आवेग स्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्। (इति पुष्पोच्चयं रूपयति।)

(प्रविश्य)

शब्दार्थ—अप्रियम् = अनर्थ, संवृत्तम् = हो गया। पुरो = सामने। दुर्वारया = अनिवारणीय। प्रतिनिवृत्तः = लौटे जा रहे हैं। दग्धुं = जलाना। निवर्तय = लौटाकर। स्खलितं = गिरने का। निरूप्य = अभिनय करके। पुष्पोच्चयं = फूलों के उठाने का।

हिन्दी अनुवाद—**प्रियंवदा**—हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है। अनर्थ हो गया। किसी पूजनीय व्यक्ति के प्रति शून्य हृदया शकुन्तला ने अपराध कर दिया है। (सामने देखकर) वास्तव में किसी साधारण व्यक्ति के प्रति नहीं। यह अति क्रोधी महर्षि दुर्वासा हैं। इस प्रकार शाप देकर वेग के बल से युक्त अनिवारणीय गति से लौटे जा रहे हैं।

अनसूया—अग्नि के अतिरिक्त और कौन जला सकता है। जाओ। चरणों में प्रणाम करके उनको लौटाकर लाओ। तब तक मैं अर्घ्य का जल ले आती हूं।

प्रियंवदा—अच्छा। (प्रस्थान)

अनसूया—(कुछ चलकर ठोकर खाने का अभिनय करती हुई) अहो, घबड़ाहट से लड़खड़ाती हुई चाल के कारण मेरे हाथ से फूल की डाली गिर गयी। (फूलों के उठाने का अभिनय करती है।)

(प्रवेश करके)

प्रियंवदा—सखि, प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति। किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः।

अनसूया—(सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय।

प्रियंवदा—यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन, प्रथम इति प्रेक्ष्या विज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति।

अनसूया—ततस्ततः।

प्रियंवदा—ततो न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति, किं त्वभिज्ञानाभरण-दर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः।

अनसूया—शक्यमिदानीमाश्वसितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।

शब्दार्थ—प्रकृतिवक्र = स्वभाव से टेढ़ा। मर्षयितव्य = क्षमा कीजियेगा। एवान्तर्हितः = अन्तर्ध्यान हो गये। आश्वसितुम् = धैर्य रख सकती है। संप्रस्थितेन = प्रस्थान करते समय। स्मरणीयम् = स्मृतिचिह्न के रूप में। पिनद्धम् = पहनाया। स्वाधीनोपाया = स्वतंत्र उपाय।

हिन्दी अनुवाद—**प्रियंवदा**—सखी, स्वभाव से ही टेढ़े वह किसकी प्रार्थना स्वीकार करते हैं। फिर भी मैंने उन्हें कुछ दयालु बना लिया।

अनसूया—(मुस्कराकर) इतना भी क्या कम है। कहो।

प्रियंवदा—जब वे लौटने को तैयार नहीं हुए तो मैंने प्रार्थना की। भगवन्! तप के प्रभाव को न जानने वाली आपकी पुत्री का यह पहला अपराध है, तो उसे क्षमा करना चाहिये।

अनसूया—तब क्या हुआ।

प्रियंवदा—मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता है, किन्तु पहचान के आभूषण दिखाने से शाप समाप्त हो जायेगा। इतना कहते हुए वे अन्तर्ध्यान हो गये।

अनसूया—इस समय धैर्य रख सकती हैं। उस राजर्षि ने प्रस्थान करते समय अपने नाम से अङ्कित एक अंगूठी स्मृति चिह्न के रूप में स्वयं (शकुन्तला) को पहनायी है। उससे शकुन्तला (शाप निवृत्ति के) उपाय में स्वतंत्र है।

प्रियंवदा—सखि, एहि। देवकार्यं तावद् निर्वर्तयावः। (इति परिक्रामतः)

प्रियंवदा—(विलोक्य) अनसूये, पश्य तावत्। वामहस्तोपहित वदनाऽऽ- लिखितेव प्रियसखी। भर्त्तृमतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्।

अनसूया—प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी।

प्रियंवदा—को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति।

(इत्युभे निष्क्रान्ते।)

इति विष्कम्भकः।

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः।)

शिष्यः—वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्र भवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति।

शब्दार्थ—एहि-आओ। निर्वर्तयावः = सम्पन्न करें। वामहस्तोपहितवदना = बायें हाथ पर मुंह रखे हुए। आलिखितेव = चित्रित सी। भर्त्तृगतया = पतिविषयक। विभावयति = जानती है। पुनरागन्तुकम् = फिर अतिथि को द्वयोरेव = दोनों के। प्रकृतिपेलवा = स्वभाव से ही कोमल। उष्णोदकेन = गर्म जल से। इत्युभे = यह कहकर। रजन्या = रात।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—सखी, आओ। तब तक देवपूजा का कार्य सम्पन्न करें। (परिक्रमा करती है।)

प्रियंवदा—(देखकर) अनसूये, देखो तो। प्रियसखी बायें हाथ पर मुंह रखे हुए चित्रित सी दिखायी दे रही है। पति विषयक चिन्ता करती हुई वह अपने आपको भी नहीं जानती है। फिर अतिथि को कहाँ से।

अनसूया—प्रियंवदे, यह बात हमारे तुम्हारे मुंह तक ही सीमित रहे स्वभाव से कोमल प्रिय सखी की रक्षा करनी चाहिये।

प्रियंवदा—कौन नवमालिका को गर्म जल से सींचेगा।

(ऐसा कहकर दोनों का प्रस्थान) विष्कम्भक समाप्त।

(तब सोकर उठे हुए शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—प्रवास से लौटे हुए पूजनीय काश्यप ने मुझे यह आदेश दिया कि क्या समय है, पता लगाऊं। प्रकाश में निकलकर देखता हूं कि कितनी रात शेष है।

(परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त प्रभातम्। तथाहि—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां,
आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां,
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥ २ ॥

अन्वय २—एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति, एकतः अरुणपुरः सरः अर्कः आविष्कृतः। एष लोकः तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां दशान्तरेषु नियम्यत इव।

शब्दार्थ—याति = जा रहा है। ओषधीनां पतिः = चन्द्रमा। पुरः = आगे। अर्कः = सूर्य। आविष्कृतः—उदय हो रहा है। नियम्यत—नियन्त्रित हो रहा है। अन्तर्हिते—अस्त हो जाने पर।

संस्कृत व्याख्या—एकतः—पश्चिमायां दिशि, ओषधीनां पति;—चन्द्रः, अस्तशिखरम्-अस्ताचलम् याति-गच्छति। एकतः—पूर्वस्यां दिशि, अरुणपुरः सरः— अरुणः गरुणाग्रजः पुरः सरः अग्रगामी यस्य सः, अर्कः—सूर्यः, आविष्कृतः—उदितो भवति। लोकः—संसारः, तेजोद्वयस्य—चन्द्रसूर्ययोः युगपद्—समकालमेव, व्यसनं— भ्रंशः, उदयः—उन्नतिश्च ताभ्याम्, आत्मदशान्तरेषु—स्वदेश विशेषेषु, नियम्यत इव—अनुशास्यते इव। उत्प्रेक्षा अलंकारः। वसन्ततिलकावृत्तम्।

प्रसंग—प्रवास से लौटे कण्व ने शिष्य से पूछा कि अभी कितनी रात शेष है। इस पर शिष्य विचार कर कह रहा है।

हिन्दी अनुवाद—(परिक्रमा करके और देखकर के) ओह सबेरा हो गया। क्योंकि एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है, दूसरी ओर अरुण को आगे किये हुए सूर्य उदय हो रहा है। यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा मानों अपने दशा-विशेषों में नियन्त्रित हो रहा है॥ २.॥

अपिच—अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे,
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्ट प्रवासजनितान्यबलाजनस्य,
दुःखानिनूनमतिमात्रसुदुःसहानि॥ ३ ॥
(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

अनसूया—यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्य जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायां अनार्यमाचरितम्।

शिष्यः—यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः।)

अन्वय ३—शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीयशोभा मे दृष्टिं न नन्दयति। नूनम् अबलाजनस्य इष्ट प्रवासजनितानि दुःखानि अतिमात्र सुदुः सहानि।

शब्दार्थ—अन्तर्हिते = अस्त हो जाने पर। कुमुद्वती = कुमुदिनी। इष्टप्रवासजनितानि = प्रियतम के प्रवास से उत्पन्न। सुदुःसहानि = असह्य होते हैं। पराङ्मुखस्य = विमुख व्यक्ति को। अनार्यमाचरितम् = अशिष्ट व्यवहार किया है।

संस्कृत व्याख्या—शशिनि—चन्द्रे, अन्तर्हिते—अस्तं याते, सा एव—या पूर्वं, कुमुद्वती—कुमुदिनी, संस्मरणीयशोभा—स्मृतिग्राह्या छविः, मे—मम, दृष्टिं—नेत्रम्, न नन्दयति—न आह्लादयति। नूनं—निश्चितम्, अबलाजनेन—स्त्रीजनस्य, इष्ट प्रवास जनितानि—इष्टस्य प्रियतमस्य, प्रवासेन—देशान्तरगमनेन, जनितानि— उत्पादितानि, दुःखानि—कष्टानि, अतिमात्र सुदुःसहानि—अत्यधिकं, सुदुः-सहानि—असह्यानि (भवन्ति)।

प्रसंग—वियोग से उत्पन्न कष्ट का अनुभव करते हुए शिष्य कहता है।

हिन्दी अनुवाद—और भी—चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर वही कुमुदिनी संस्मरणीय शोभा से युक्त मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं करती है। निश्चित ही स्त्रियों को अभीष्ट व्यक्ति के प्रवास से उत्पन्न दुःख अत्यन्त असह्य हो जाते हैं। ३।

(पर्दा हटाकर प्रविष्ट होकर)

अनसूया—यद्यपि विषयों से विमुख व्यक्ति को ये सब बातें ज्ञात नहीं हैं, तथापि उस राजा ने शकुन्तला के साथ अशिष्ट व्यवहार कियां है।

शिष्यः—मैं गुरु से निवेदन करता हूँ कि हवन का समय हो गया है।

(ऐसा कहकर निकल जाता है।)

अनसूया—प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि निजकरणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु, येना सत्यसन्धे जने शुद्धहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः शाप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति व्यसितापि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्।

शब्दार्थ—प्रतिबुद्धाऽपि = जागी हुई भी। काम = कामदेव। सकामो = इच्छा पूर्ण हो। असत्यसन्धे = असत्यप्रतिज्ञ। कारिता = कराया है। विकारयति = बिगाड़ करा रहा है। विसृजति = भेजता। अभ्यर्थ्यताम् = प्रार्थना करें। पारयामः = सकती हूं। प्रतिनिवृत्तस्य = लौटे हुए। तात = पिता। परिणीताम् = विवाह। आपन्नसत्त्वाम् = गर्भवती। इत्थं = ऐसी। करणीयम् = करना चाहिये।

हिन्दी अनुवाद—जागी हुई भी क्या करूँ। अपने नित्य काम के लिये मेरे हाथ-पैर नहीं उठ रहे हैं। इस समय कामदेव की इच्छा पूर्ण हो, जिसने असत्य प्रतिज्ञ व्यक्ति के प्रति शुद्ध हृदय वाली सखी (शकुन्तला) का प्रेम कराया है। अथवा दुर्वासा का शाप ही यह बिगाड़ करा रहा है। अन्यथा कैसे वह राजर्षि उस प्रकार की बातें करके इतने दिनों तक एक पत्र भी न भेजता। अब उसे सुध दिलाने के लिये उसके पास अगूँठी भेजनी ही पड़ेगी। कष्ट सहन करने वाले तपस्वियों के लिए किससे प्रार्थना करें। सखी शकुन्तला का दोष है—यह निश्चय करके कह भी नहीं सकती हूं। अथवा परदेश से लौटे हुए पिता कण्व से यह निवेदन भी नहीं कर सकती हूं कि शकुन्तला का विवाह दुष्यन्त से हो गया है और वह गर्भवती है। ऐसी अवस्था में हमें क्या करना चाहिये।

प्रियंवदा—(सहर्षम्) सखि, त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्।

अनसूया—सखि, कथमेतत्?

प्रियंवदा—शृणु। इदानीं सुखशयित प्रच्छिका शकुन्तला सकाशं गताऽस्मि।

अनसूया—ततस्ततः।

प्रियंवदा—तावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति।

अनसूया—अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः।

प्रियंवदा—अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या।

अनसूया—(सविस्मयम्) कथमिव।

प्रियंवदा—(संस्कृतमाश्रित्य)

शब्दार्थ—त्वरस्व = शीघ्रता करो। निर्वर्तयितुम् = पूरा करने के लिये प्रच्छिका = पूछने के लिये। सकाशं = समीप। अवनतमुखीं = नीचे मुंह की हुई। परिष्वज्व = आलिंगन करके। संवृत्ता = हो गई हो।

हिन्दी अनुवाद—(प्रवेश करके) प्रियंवदा—(आनन्द के साथ) सखी शकुन्तला के प्रस्थान के समय के मांगलिक कार्य को पूरा करने के लिये शीघ्रता करो।

अनसूया—सखी, यह कैसे?

प्रियंवदा—सुनो। मैं अभी 'सुखपूर्वक सोयी कि नहीं' यह पूछने के लिये शकुन्तला के पास गयी थी।

अनसूया—तब क्या हुआ।

प्रियंवदा—तब लज्जा से नीचे मुंह की हुई उसको पिता काश्यप ने गले लगाकर इस प्रकार अभिनन्दन किया। सौभाग्य से धुएं से व्याकुल दृष्टि वाले भी यजमान की आहुति ठीक अग्नि में ही पड़ी। पुत्री, योग्य शिष्य को दी गई विद्या की तरह तुम अशोचनीय हो गई हो। आज ही ऋषियों से सुरक्षित तुमको पति के पास भेज देता हूं।

अनसूया—आज किसने यह समाचार पिता काश्यप को बताया।

प्रियंवदा—यज्ञशाला में प्रविष्ट होकर अशरीरधारी छन्दोमयी वाणी ने।

अनसूया—(आश्चर्य के साथ) किस रूप में।

प्रियंवदा—(संस्कृत का आश्रय लेकर)

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव॥ ४ ॥

अनसूया—(प्रियंवदामाश्लिष्य) सखि, प्रियं मे। किन्त्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारण्यं परितोषमनुभवामि।

प्रियंवदा—सखि आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु।

अन्वय ४—ब्रह्मन्, दुष्यन्तेन आहितं तेजः भुवः भूतये दधानां तनयाम् अग्निगर्भां शमीमिव अवेहि।

शब्दार्थ—आहितं = गर्भाधान रूप में। दधानां = धारण करने वाली। भूतये = कल्याण के लिये। भुवः = संसार के। अवेहि = समझो। तनयां = पुत्री को। अग्निगर्भां = अग्नि से युक्त। आश्लिष्य = आलिंगन करके। परितोषम् = सन्तोष। निर्वृता = सुखी।

संस्कृत व्याख्या—हे ब्रह्मन्—हे द्विजोत्तम, दुष्यन्तेन—राजा दुष्यन्तेन, आहितं— गर्भाधानरूपेण, संस्थापितम्, तेजः—वीर्यम्, भुवः—पृथिव्याः, भूतये—मङ्गलाय, दधानां—धारयन्तीम्, तनयां—स्वपुत्रीं, अग्निगर्भां—वह्निगर्भां, शमीमिव—शमीवृक्षमिव, अवेहि—जानीहि। अत्रोपमाऽलंकारः।

प्रसंग—प्रियंवदा संस्कृत का आश्रय लेकर अनसूया से कहती है। महर्षि कण्व ने छन्दोमयी वाणी में शकुन्तला के गान्धर्व विवाह को जान लियां है।

हिन्दी अनुवाद—हे ब्रह्मन्! दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज को जगत के कल्याण के लिये धारण करने वाली पुत्री को छिपी हुई अग्नि से युक्त शमीवृक्ष के समान समझो॥ ४ ॥

अनसूया—(प्रियंवदा को गले लगाकर) सखी, मैं प्रसन्न हूँ। किन्तु आज ही शकुन्तला ले जायी जा रही है, इससे मैं खेदमिश्रित सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ।

प्रियंवदा—सखी हम दोनों अपने कष्ट को किसी प्रकार दूर कर लेंगी। वह तपस्विनी (बेचारी) तो सुखी हो।

अनसूया—तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गकए-तन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमो निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमांहस्तसंनिहितां कुरु। यावदहमपि तस्यै गोरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गल-समालम्भनानि विरचयामि।

प्रियंवदा—तथा क्रियताम्।

(अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्यति।)

(नेपथ्ये)

गौतमि, आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तला नयनाय।

प्रियंवदा—(कर्णं दत्त्वा) अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिना-पुरगामिन ऋषयः शब्दाय्यन्ते।

शब्दार्थ—चूतशाखावलम्बिते=आम की डाल में लटके हुए नारिकेलसमुद्गक = नारियल के डिब्बे में। एतन्निमित्तमेव = इसी काम के लिये। कालान्तरक्षमो = बहुत काल तक। निक्षिप्ता = रख छोड़ी है मङ्गलसमालम्भनानि = माङ्गलिक आभूषण। विरचयामि = तैयार करती हूं आदिश्यन्तो = आदेश दे दो। नयनाय-ले जाने के लिये। त्वरस्व = शीघ्रत करो। शब्दाय्यन्ते = बुलाये जा रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—अनसूया—मैंने इस आम की डाल में लटके हुए एक नारियल के डिब्बे में इसी काम के लिये बहुत काल तक रहने वाली मौलसिरी की माला रख छोड़ी है। तो इसको तुम अपने हाथ में लो। जब तक मैं भी इसके लिये गोरोचन, तीर्थों की मिट्टी, दूब के नये पत्ते और माङ्गलिक आभूषण तैयार करती हूं।

प्रियंवदा—वैसा करती है।

(अनसूया चली जाती है। प्रियंवदा फूलों को लेने का नाट्य करती है।)

(नेपथ्य में)

गौतमि, शार्ङ्गरव आदि को शकुन्तला को ले जाने के लिये आदेश दे दो।

प्रियंवदा—(कान लगाकर) अनसूये, शीघ्रता करो, शीघ्रता करो। हस्तिनापुर को जाने वाले ऋषि लोग बुलाये जा रहे हैं।

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता)

अनसूया—सखि, एहि। गच्छावः। (इति परिक्रामतः।)

प्रियंवदा—(विलोक्य) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतीष्टनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्।

(इत्युपसर्पतः।)

(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला)

तापसीनामन्यतमा—(शकुन्तलां प्रति) जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवी-शब्दं लभस्व।

द्वितीया—वत्से, वीरप्रसविनी भव।

तृतीया—वत्से, भर्तुर्बहुमता भव।

(इत्याशिषो दत्त्वा गोतमीवर्जं निष्क्रान्ताः।)

शब्दार्थ—शिखामज्जिता = पूर्ण स्नान करके। उपसर्पाव = चलें। यथोद्दिष्टव्यापारा = पूर्वोक्तरूप में। जाते = पुत्री। भर्तुः = पति के। बहुमानसूचकं = बहुत सम्मान सूचक। लभस्व = प्राप्त करो। वत्से = पुत्री। वीर प्रसविनी = वीर पुत्र को जन्म देने वाली।

हिन्दी अनुवाद—(माङ्गलिक वस्तुओं को हाथ में लेकर प्रवेश करके)

अनसूया—सखी, आओ, चलें। (दोनों चारों ओर घूमती हैं।)

प्रियंवदा—(देखकर) यह शकुन्तला सूर्योदय के समय ही पूर्ण स्नान करके नीवार (तिन्नी के चावल) का पात्र हाथ में लिये, स्वस्तिवाचन का पाठ करती हुई तपस्विनियों से अभिनन्दन की जाती हुई बैठी है। हम दोनों इसके पास चलें। (दोनों उसके पास जाती हैं।) (तदनन्तर पूर्वोक्त रूप में आसन पर बैठी हुई शकुन्तला का प्रवेश।)

एक तपस्विनी—(शकुन्तला से) पुत्री, पति के बहुत सम्मानसूचक महारानी शब्द को प्राप्त करो।

दूसरी—पुत्री, वीर पुत्र को जन्म देने वाली हो।

तीसरी—पुत्री, पति के बहुत अधिक सम्मान को प्राप्त करो।

(ऐसा आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर अन्य सभी तपस्विनियों का प्रस्थान।)

सख्यौ—(उपसृत्य) सखि, सुखमज्जनं ते भवतु।

शकुन्तला—स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्।

उभे—(मङ्गलपात्राण्यादाय। उपविश्य) हला, सज्जा भव। यावत्ते मङ्गल समालम्भनं विरचयावः।

शकुन्तला—इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति।

(इति वाष्पं विसृजति।)

उभे—सखि, उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्।

(इत्यश्रूणि प्रसृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।)

प्रियंवदा—आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते।

(प्रविश्योपायन हस्तावृषिकुमारकौ)

शब्दार्थ—मज्जनं = स्नान। निषीदतम् = बैठो। सज्जा = तैयार समालम्भनं = अलंकरण। वाष्पं विसृजति = रोती है। प्रसृज्य = पोंछकर प्रसाधनैः = अलंकारों से।

हिन्दी अनुवाद—दोनों सखियाँ—(पास जाकर) = सखी, तुम्हारा स्नान सुखदायी हो।

शकुन्तला—मेरी दोनों सखियों का स्वागत है। इधर बैठो।

दोनों—(माङ्गलिक पात्रों को लेकर। बैठकर) सखी, तैयार हो जाओ। जब तक हम दोनों तुम्हारा माङ्गलिक अलंकरण करती हैं।

शकुन्तला—यह भी बहुत मानने के योग्य है। अब मेरे लिये सखियों के द्वारा अलङ्कृत होना दुर्लभ हो जायेगा। (ऐसा कहकर रोती है)

दोनों—सखी, इस मङ्गल के अवसर पर तुम्हारा रोना उचित नहीं है।

(आंसुओं को पोंछकर अलंकृत करने का नाट्य करती है।)

प्रियंवदा—आभूषणों के योग्य यह रूप आश्रम में प्राप्त अलंकारों से विकृत हो जा रहा है।

(आभूषणों को हाथ में लिये हुए दो ऋषिकुमारों का प्रवेश।)

उभौ—इदमलंकरणम्। अलंक्रियतामत्रभवती।

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः।)

गौतमी—वत्स,नारद, कुत एतत्।

प्रथमः—तातकाश्यप प्रभावात्।

गौतमी—किं मानसी सिद्धिः।

द्वितीयः—न खलु। श्रूयताम्। तत्र भवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोः वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत् इदानीम्—

शब्दार्थ—अलंकरणम् = आभूषण। विस्मिताः = आश्चर्यचकित। वत्स = पुत्र। मानसी = मानसिक। सिद्धिः = संकल्प। वयमाज्ञप्ताः = हमें आज्ञा दी थी। हेतोः = के लिये। वनस्पतीभ्यः = वृक्षों से। आहरत् = चुन लाओ।

हिन्दी अनुवाद—दोनों—यह आभूषण है। इनसे इसको (शकुन्तला को) अलंकृत करें।

(सभी देखकर आश्चर्यचकित होती हैं।)

गौतमी—पुत्र नारद, ये कहाँ से।

पहला—पिता काश्यप के प्रभाव से।

गौतमी—क्या ये ऋषि के मानसिक संकल्प का फल है।

दूसरा—नहीं। सुनिये। पूजनीय (ऋषि) ने हमें आज्ञा दी थी कि शकुन्तला के लिये वृक्षों से फूल चुनकर लाओ। तो इस समय—

> क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं,
> निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
> अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितैः,
> दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥ ५ ॥

अन्वय ५—नः केनचित् तरुणा इन्दुपाण्डु माङ्गल्यं क्षौमम् आविष्कृतम्। केनचित् चरणोपरागसुभगः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः। अन्येभ्यः आपर्वभागोत्थितैः किसलयोद्भेद प्रतिद्वन्द्विभिः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

शब्दार्थ—क्षौमं = रेशमी वस्त्र। केनचित् = किसी ने । इन्दुपाण्डु = चन्द्रमा के समान श्वेत। तरुणा = वृक्ष ने। माङ्गल्यम् = मंगल के अवसर पर पहनने के योग्य। आविष्कृतम् = निकालकर दिया। निष्ठ्यूतः = निकाला। चरणोपरागसुलभो = पैरों को रंगने के योग्य। लाक्षारसः = अलक्तक या महावर। आपर्वभागोत्थितैः = कलाई तक उठे हुए। किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः = सौन्दर्य में कोमल पत्तों के साथ स्पर्धा करने वाले। नः = हमको।

संस्कृत व्याख्या—नः—अस्मभ्यम्, केनचित् तरुणा—वृक्षेण, इन्दुपाण्डु—चन्द्रशुभ्रम्, माङ्गल्यं—मङ्गलकर्मयोग्यम्, क्षौमम्—दुकूलम्, आविष्कृतम्—प्रकटीकृतम्, प्रदत्तमित्यर्थः। केनचित्—केनापि तरुणा, चरणोपरागसुभगः—चरणयोः पादयोः उपरागः रञ्जनं तत्र सुभगः, लाक्षारसः—अलक्तरसः, निष्ठ्यूतः—आविष्कृतःअन्येभ्यः—अन्यवृक्षेभ्यः, आपर्वभागोत्थितैः—मणिबन्धं यावत् निर्गतैः, किसलयोः— नवपल्लवानाम्, उद्भेदाः—विकासा., प्रतिद्वन्द्विभिः—प्रतिस्पर्धिभिः, वनदेवताकरतलैः—वनदेवतायाः हस्तैः, आभरणानि—आभूषणानि, दत्तानि—वितीर्णानि। अत्रोपमाऽलंकारः।

प्रसंग—तात काश्यप की आज्ञा से फूल लेने गये ऋषि कुमारों को वनस्पतियाँ शकुन्तला के लिए विभिन्न उपहार देती है। उन्हीं के विषय में एक ऋषिकुमार यहाँ कहता है।

हिन्दी अनुवाद—हमें किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पैरों को रंगने के योग्य अलक्तक प्रकट किया। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए सौन्दर्य में कोमल पत्तों के साथ स्पर्धा करने वाले वनदेवता के करतलों से आभूषण प्रदान किये॥ ५ ॥

प्रियंवदा—(शकुन्तलां विलोक्य) हला, अनयाऽभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनु भवितव्या राजलक्ष्मीः। (शकुन्तला पीडां रूपयति।)

प्रथमः—गौतम, एह्येहि। अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

द्वितीयः—तथा। (इति निष्क्रान्तौ)

सख्यौ—अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयंजनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु ते आभरण-विनियोगं कुर्वः।

शकुन्तला—जाने वां नैपुणम्।

उभे नाट्येनालंकुरुतः।)

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः।)

काश्यपः—

शब्दार्थ—अनया = इस। अभ्युपपत्त्या = वृक्षों के अनुग्रह से। वीडां-लज्जा का। रूपयति = अभिनय करती है। एहि-एहि = आओ आओ। अभिषेकोत्तीर्णाय = स्नान करके निकले हुए। आभरणविनियोगं कुर्वः = आभूषण को पहनाती हैं।

हिन्दी अनुवाद—**प्रियंवदा**—(शकुन्तला को देखकर) सखी, इस अनुग्रह से सूचित होता है कि तुम पति के घर में राजलक्ष्मी का अनुभव करोगी।

(शकुन्तला लज्जा का अभिनय करती है।)

पहला—गौतम, आओ, आओ। स्नान करके निकले हुए काश्यप से वनस्पतियों की सेवा का निवेदन कर दें।

दूसरा—ठीक है।

दोनों सखियाँ—ओह, हमलोगों ने कभी आभूषणों का उपयोग नहीं किया है। चित्रकारी के कार्य से परिचित होने से हम लोग तुम्हारे अंगों में आभूषण को पहनाती हैं।

शकुन्तला—मैं तुम्हारी निपुणता को जानती हूँ।

(दोनों शकुन्तला को आभूषण पहनाने का नाट्य करती हैं।)

(तदनन्तर स्नान करके आये हुए काश्यप का प्रवेश)

काश्यप—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः,
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ६ ॥

अन्वय ६—अद्य शकुन्तला यास्यति इति हृदयम् उत्कण्ठया संस्पृष्टम्, कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिः कलुषः, दर्शनं चिन्ताजडम्। अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् ईदृशम् इदं वैक्लव्यम्, गृहिणः नवैः तनया विश्लेषदुःखैः कथं नु पीड्यन्ते।

शब्दार्थ—यास्यति = जायेगी। संस्पृष्टम् = व्याप्त है। उत्कण्ठया = दुःख से। स्तम्भित = रुकने से। वाष्पवृत्ति = आंसुओं के बहने से। कलुषः = मैला, स्वर-भंगयुक्त। वैक्लव्यं = दुःख। अरण्यौकसः = वन निवासी। पीड्यन्ते = दुःखित होते हैं।

संस्कृत व्याख्या—अद्य शकुन्तला, यास्यति—पतिगृहं गमिष्यति, इति—एतस्य हेतोः हृदयं—मम मनः, उत्कण्ठया—दुःखेन, संस्पृष्टम्—समाक्रान्तमस्ति। कण्ठः—गलदेशः, स्तम्भित—अवरुद्ध, वाष्पस्य वृत्तिः—अश्रूणां प्रवृत्तिः, कलुषः—स्वरभङ्गवान्। दर्शनं—दृष्टिः, चिन्ताजडम्—निश्चेष्टमस्ति। अरण्यौकसः—वनवासिनः मम तावत्—मम कण्वस्यापि, स्नेहात्—पुत्रीप्रेम्णः, ईदृशमिदं—एतादृशमेतत्, वैक्लव्यं—दुःखाधिक्यमस्ति तर्हि, गृहिणः—गृहस्थाः, नवैः—नूतनैः, तनयाविश्लेष-दुःखैः—पुत्रीवियोगदुःखैः, कथं नु—केनावर्णनीयेन रूपेण, पीड्यन्ते—व्याकुलीक्रियन्ते। अत्र व्यतिरेकोऽलंकारः।

प्रसंग—शकुन्तला की विदायी के अवसर पर कण्व की वियोगजन्य वेदना का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—आज शकुन्तला विदा होगी, इसलिये मेरा हृदय दुःख से भर रहा है। आंसुओं को बहने से रोकने से गला भर आया है। दृष्टि चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो गयी है। जंगल में रहने वाले मुझको जब (शकुन्तला के प्रति) इस प्रकार के प्रेम से दुःख हो रहा है तो गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग के दुःख से क्यों नहीं दुःखित होते होंगे (अर्थात् अवश्य दुःखित होते होंगे।)

(इति परिक्रामति।)

सख्यौ—हला शकुन्तले, अवसितभण्डनाऽसि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। (शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते।)

गौतमी—जाते, एष ते आनन्द परिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत् प्रतिपद्यस्व।

शकुन्तला—(सव्रीडम्) तात, वन्दे।

काश्यपः—वत्से,—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भतुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमवाप्नुहि ॥ ७ ॥

अन्वय ७—वत्से, यर्मिष्ठा ययातेः इव भर्तुः बहुमता भव। सा पुरुम् इव त्वम् अपि सम्राजं सुतम् अवाप्नुहि।

शब्दार्थ—अवसितमण्डनाऽसि = तुम्हारा श्रृंगार पूरा हो गया है। परिधत्स्व = पहन लो। साम्प्रतं = अब। क्षौमयुगलम् = दोनों रेशमी वस्त्रों को। परिपद्यस्व = पालन करो। अवाप्नुहि = प्राप्त करो।

संस्कृत व्याख्या—वत्से—पुत्रि, शर्मिष्ठा—वृर्षपर्वणः कन्या, ययातेः इव—नहुष पुत्रस्य यथा प्रियतमाऽभवत्, तथा त्वमपि, भर्तु—राज्ञो दुष्यन्तस्य, बहुमता—प्रियतमा भव, सा—शर्मिष्ठा, पुरुमिव—पुरुं यथा तथैव, त्वमपि सम्राजसुतं—सार्वभौमं पुत्रम्, अवाप्नुहि—लभस्व। उपमाऽलंकारः।

हिन्दी अनुवाद—(चारों ओर घूमते हैं।)

दोनों सखियाँ—सखी शकुन्तला, तुम्हारा श्रृंगार पूरा हो गया है। अब दोनों रेशमी वस्त्रों को पहन लो। (शकुन्तला उठकर पहनती है।)

गौतमी—पुत्री, आनन्द को बहाने वाली आंखों से तुमको गले लगाते हुए तुम्हारे पिता यहाँ उपस्थित हैं। तो उचित शिष्टाचार का पालन करो।

शकुन्तला—(लज्जा के साथ) पिताजी, प्रणाम।

प्रसंग—पिता काश्यप पुत्री शकुन्तला को विदायी के समय आशीर्वाद दे रहे हैं।

काश्यप—पुत्री—ययाति की शर्मिष्ठा की भांति पति को अतिप्रिय हो, उसने जिस प्रकार पुरु जैसे पुत्र को प्राप्त किया उसी प्रकार तुम भी सम्राट पुत्र को प्राप्त करो।

गौतमी—भगवन्, वरः खल्वेषः। नाशीः।

काश्यपः—वत्से, इतः सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणी कुरुष्व। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

काश्यपः—(ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते।) वत्से,

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः,
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः,
वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु॥ ८ ॥

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः। (प्रविश्य)

अन्वय ८—अमी समिद्वन्तः वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्या, प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः वैतानां वह्नयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपघ्नन्तः त्वां पावयन्तु।

शब्दार्थ—खल्वेष = यह वस्तुतः। नाशीः = आशीर्वाद नहीं। सद्यो = अभी। अमी = ये। क्लृप्तधिष्ण्या = जिनको यथास्थान स्थापित किया गया है। समिद्वन्तः = समिधाओं से प्रज्वलित। दर्भाः = कुश। अपघ्नन्तो = नष्ट करती हुई। दुरितं = पाप को। वैतानास्त्वां = यज्ञिय। पावयन्तु = पवित्र करें।

संस्कृत व्याख्या—अमी—एते, समिद्वन्तः—समिधाभिः प्रदीप्ताः, वेदिं परितः—यज्ञवेद्याः समन्तात, क्लृप्तधिष्ण्याः—क्लृप्तानि विहितानि धिष्ण्यानि स्थानानि येषां ते, प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः—प्रान्तेषु पार्श्वभागेषु संस्तीर्णा आकीर्णाः दर्भाः कुशाः येषां ते, वैतानां—यज्ञियाः, वह्नयः—अग्नयः, हव्यगन्धैः—हुतद्रव्यग्रन्धैः, दुरितं—पापं, अपघ्नन्तः—विनाशयन्तः, त्वां—शकुन्तलाम्, पावयन्तु—पवित्रतां प्रापयन्तु।

हिन्दी अनुवाद—गौतमी—भगवन, यह वस्तुतः वर है। आशीर्वाद नहीं।

काश्यप—पुत्री, आओ। अभी हवन की गयी अग्नियों की प्रदक्षिणा करो। (सब परिक्रमा करते हैं।)

प्रसंग—पिता काश्यप अपनी पुत्री शकुन्तला को विदायी के अवसर पर शुभ आशीर्वाद एवं मंगलकामनायें देते हैं।

काश्यप—(ऋग्वेद के छन्द में बने हुए श्लोक से आशीर्वाद देते हैं।) पुत्री, ये समिधाओं से प्रज्वलित, वेदी के चारों ओर प्रतिष्ठित, किनारे पर बिछे हुए कुशों से युक्त, यज्ञिय अग्नियाँ हव्य वस्तुओं की सुगन्ध से पापों को नष्ट करती हुई तुमको पवित्र करें। अब तुम प्रस्थान करो। (इधर उधर दृष्टि डालकर) वे शार्ङ्गरव आदि कहाँ हैं। (प्रविष्ट होकर)

शिष्यः—भगवन, इमे स्मः।

काश्यपः—भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

शार्ङ्गरव—इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ ९ ॥

अन्वय ९—युष्मासु अपीतेषु या प्रथमं जलं पातुं न व्यवस्यति। भवतां स्नेहेन या प्रियमण्डना अपि पल्लवं न आदत्ते। वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः उत्सवः भवति। सा इयं शकुन्तला पतिगृहं याति, सर्वैः अनुज्ञायताम्।

शब्दार्थ—आदेशय = दिखाओ। इत इतो = इधर। भवती = आप। अपीतेषु = जब तक तुम जल नहीं पी लेते तब तक। आद्ये = पहले। प्रसूति समये = उद्‌गम के समय। अनुज्ञायताम् = स्वीकृति दो।

संस्कृत व्याख्या—हे तपोवनतरवः, युष्मासु अपीतेषु—अकृतजलसेकेषु, या— शकुन्तला, प्रथमं- पूर्वम्, जलं-पानीयम्, पातुं- ग्रहीतुम्, न व्यवस्यति—न यतते स्म। भवतां स्नेहेन—वृक्षेषु प्रेम्णा, या—शकुन्तला, प्रियमण्डना अपि—अलंकरणप्रिया अपि। पल्लवम्—किसलयम्, न आदत्ते—न गृह्णाति स्म। वः- युष्माकम्, आद्ये— प्रथमे,। कुसुमप्रसूतिसमये—पुष्पाणां उद्‌गमस्य काले, यस्याः—शकुन्तलायाः, उत्सवः भवति—आनन्दातिरेको भवति स्म। सेयं—सैषा शकुन्तला, पतिगृहं—भर्तृसदनम्, याति—गच्छति, सर्वैः—सकलैरपि, अनुज्ञायताम्— अनुमन्यताम्।

हिन्दी अनुवाद—शिष्य—भगवन, हम ये हैं।

काश्यपः—अपनी बहन को मार्ग दिखाओ।

शार्ङ्गरव—आप इधर चलें। (सभी परिक्रमा करते हैं।)

प्रसंग—काश्यप शकुन्तला को तपोवन के वृक्षों से पतिगृहगमन की आज्ञा देने को कहते हैं।

हे तपोवन के वृक्षों! जो तुम्हें बिना जल पिलाये नहीं पीती थी, तुम्हारे पति प्रेम के कारण जो अलंकारों की प्रेमी होने पर भी नये पत्ते नहीं तोड़ती थी, तुम्हारे पुष्पोद्‌गम के समय जिसका उत्सव होता था, वही यह शकुन्तला पतिगृह को जा रही है, तुम सब अपनी स्वीकृति दो॥ ९ ॥

(कोकिलरवं सूचयित्वा।)

अनुमतगमना शकुन्तला,
तरुभिरियं बनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा,
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्॥ १० ॥

(आकाशे)

अन्वय १०—इयं शकुन्तला वनवासबन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना, यथा कलं परभृतविरुतं एभिः ईदृशम् प्रतिवचनीकृतम्।

शब्दार्थ—अनुमतगमना = आज्ञा दे दी है। परभृतविरुतं = कोयल की आवाज को। कलं = मधुर। प्रतिवचनीकृतम् = प्रत्युत्तर बनाया है। एभिः = इन्होंने। ईदृशम् = इस प्रकार से।

संस्कृत व्याख्या—इयं शकुन्तला, वनवासबन्धुभिः—तपोवनसहवासिभिः, तरुभिः—वृक्षैः, अनुमतगमना—अनुमतं स्वीकृतं गमनं पतिगृहं प्रति प्रस्थानं यस्याः सा, यथा-यतो हि, कलं—मधुरम्, परभृतविरुतं—कोकिलकूजितम्, एभिः—तरुभिः, ईदृशम्—एवं प्रकारेण, प्रतिवचनीकृतम्—प्रत्युत्तरतां प्रापितम्।

हिन्दी अनुवाद—(कोयल की कूक सुनने का अभिनय करके)

प्रसंग—शकुन्तला की विदायी के अवसर पर कोयल की मधुर कूक आवाज सुनकर इस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

इस शकुन्तला को बनवास के साथी वृक्षों ने जाने की अनुमति दे दी है, क्योंकि मधुर कोयल की आवाज को इन्होंने इस प्रकार अपना प्रत्युत्तर बनाया है।

(आकाश में)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभिः,
छायाद्रुमैर्नियमितार्क मयूखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः,
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥ ११ ॥
(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति।)

गौतमी—जाते, ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनाऽसि तपोवनदेवताभिः। प्रणाम भगवतीः।

अन्वय ११—कमलिनी हरितैः सरोभिः रम्यान्तरः, छायाद्रुमैः नियमितार्कमयूख-तापः, अस्याः पन्थाः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवनः च शिवः च भूयात्।

शब्दार्थ—रम्यान्तरः = रमणीय। हरितैः = हरे भरे। सरोभिः = तालाबों से। अर्क = सूर्य। मयूख = किरण। तापः = सन्तापः। कुशेशय = कमलों के। रजो = पराग। मृदुरेणुरस्याः = कोमल धूलियुक्त। शिवश्च = और कल्याणकारी। पन्थाः-मार्ग।

संस्कृत व्याख्या—कमलिनीहरितैः—पद्मिनीभिः श्यामलैः, सरोभिः —जलाशयैः रम्यान्तरः—रम्यं मनोहरम् अन्तरः अवकाशः यस्य तादृशोभूयात्। छायाद्रुमैः—छाया प्रधानाः सघनाः द्रुमाः वृक्षाः तैः। नियमितार्कमयूखतापः —नियमितःनिवारितः अर्कस्य सूर्यस्य मयूखानां किरणानां तापः सन्तापः यस्मिन् तादृशोभूयात्। अस्याः— शकुन्तलायाः, पन्थाः—मार्गः, कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः —कुशेशयानां पद्मानां रजांसि परागाः तैः मृदवः कोमलाः रेणवः धूलयः यस्मिन् सः। शान्तानुकूलपवनश्च—शान्तः मन्दः अनुकूलः सुखदः पवनः वायुः पत्र चः, शिवश्च—मङ्गलकरश्च भूयात्।

प्रसंग—ऋषि कण्व शकुन्तला के कल्याणकारी मार्ग को प्रशस्त होने की कामना यहाँ प्रगट करते हैं।

हिन्दी अनुवाद—इस (शकुन्तला)का मार्ग कमलिनियों से हरे-भरे तालाबों के द्वारा रमणीय मध्य भाग वाला हो। घनी छाया वाले वृक्षों से सूर्य की किरणों का ताप दूर हो। इसका मार्ग कमलों के पराग से कोमल धूलियुक्त, शान्त और अनुकूल वायु से युक्त तथा कल्याणकारी हो। (सब आश्चर्य के साथ सुनते हैं।)

गौतमी—पुत्री, सम्बन्धीजनों के तुल्य प्रेम करने वाले तपोवन के देवताओं ने तुमको जाने की स्वीकृति दे दी है। इन देवताओं को प्रणाम करो।

शकुन्तला—(सप्रणामं परिक्रम्य जनान्तिकम्)

हला प्रियंवदे, आर्यपुत्र दर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तते।

प्रियंवदा—न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थित-वियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते।

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥ १२ ॥

अन्वय १२—मृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः मयूरा परित्यक्तनर्तनाः लता अपसृतपाण्डुपत्राः अश्रूणि मुञ्चन्ति इव।

शब्दार्थ—पुरतः = आगे। प्रवर्तते = बढ़ रहे हैं। समवस्था = तुम्हारे समान ही अवस्था। उद्गलित = उगल दिये हैं। दर्भ = कुशा। कवला = ग्रास। अपसृत = झर रहे हैं। पाण्डुपत्रा = पीले पीले पत्ते। मुञ्चन्ति = गिर रहे हैं। अश्रूणि इव = आंसुओं के समान।

संस्कृत व्याख्या—मृग्यः—हरिण्यः, उद्गलितदर्भकवला—उद्गलितः निष्ठ्यूतः, दर्भाणां कुशानां कवलः ग्रासः याभिः तादृश्यः सन्ति। मयूराः—बर्हिणाः, परित्यक्तनर्तनामयूराः—परित्यक्तं वर्जितं नृत्यं यैः तादृशः सन्ति। लताः व्रततयः, अपसृतपाण्डुपत्रा-अपसृतानि पतितानि पाण्डु पीतानि पत्राणि पर्णानि, अश्रूणि—वाष्पाणि, मुचन्ति इव—त्यजन्तीव। उत्प्रेक्षा अलंकारः।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—(प्रणाम करती हुई चारों ओर घूमकर हाथ की ओट में) सखी प्रियंवदा, आर्यपुत्र के दर्शन की उत्सुकता होने पर भी आश्रम भूमि को छोड़ते हुए मेरे पैर बड़ी कठिनता से आगे बढ़ रहे हैं।

प्रियंवदा—तपोवन के वियोग से केवल तुम्हीं दुःखित नहीं हो अपितु तुमसे विदाई का समय उपस्थित होने के कारण तपोवन की भी तुम्हारे समान अवस्था दिखाई पड़ रही है।

प्रसंग—शकुन्तला की विदायी के अवसर पर प्रियंवदा ने दुःखी शकुन्तला से तपोवन की दयनीय अवस्था का जीवन्त वर्णन किया है।

हरिणियाँ कुश के कौर उगल रही हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लताओं से पीले-पीले पत्ते इस प्रकार से झर रहे हैं मानों उनके आंसू गिर रहे हों।

शकुन्तला—(स्मृत्वा) तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये।

काश्यप—अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहम्। इयं तावद् दक्षिणेन।

शकुन्तला—(उपेत्य लतामालिङ्ग्य) वनज्योत्स्ने, चूतसंगताऽपि मां प्रत्यालिङ्गेतोगताभिशाखा बाहुभिः। अद्य प्रभृति दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि।

काश्यपः— संकल्पित प्रथममेव मया तवार्थे,
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयं,
अस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः ॥ १३ ॥

अन्वय १३—मया तवार्थे प्रथमम् एव संकल्पितम् आत्मसदृशम् भर्तारं त्वं सुकृतैः गता। इयं नवमालिका चूतेन संश्रितवती। सम्प्रति अहं अस्यां त्वयि च वीतचिन्तः।

शब्दार्थ—आमन्त्रयिष्ये = विदाई ले लूं। अवैमि = जानता हूं। उपेत्य = पास जाकर। चूतसंगताऽपि—आम से मिली हुई भी। संश्रितवती—मिल गई है। वीतचिन्तः— चिन्तामुक्त

संस्कृत व्याख्या—मया—काश्यपेन, तवार्थे—त्वन्निमित्तम्, प्रथममेव—पूर्वमेव, संकल्पितम्—मनसा निर्णीतम्, आत्मसदृशम्—स्वगुणैस्तुल्यम्, भर्तारम्—पतिम्, त्वं— शकुन्तला, सुकृतैः—पुण्यैः, गता—प्राप्ता। इयम्—एषा, नवमालिका—वनज्योत्स्ना, चूतेन—आम्रेण, संश्रितवती—संगतवती। सम्प्रति—इदानीम्, अहं—काश्यपः, अस्यां—वनज्योत्स्नायाम्, त्वयि— शकुन्तलायां च, वीतचिन्तः—चिन्तामुक्तोऽस्मि।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—(स्मरण करके) तात, मैं अपनी लता बहिन वन ज्योत्स्ना से बिदाई ले लूं। काश्यप—मैं जानता हूं कि तुम्हारा उस पर बहिन का सा प्रेम है। यह दाहिनी ओर है।

शकुन्तला—(पास जाकर लता से लिपटकर) हे वनज्योत्स्ना, अपने पति आम से मिली हुई भी तुम इधर की ओर आई हुई अपनी शाखा रूपी बाहुओं से मुझसे गले मिलो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊंगी।

प्रसंग—यहाँ पर काश्यप ऋषि शकुन्तला से अपने पूर्व में किये हुए संकल्प को व्यक्त कर रहे हैं।

काश्यप—मैंने तुम्हारे लिये पहले ही जिसका संकल्प किया था, अपने सदृश उस पति को तू पुण्यों से प्राप्त हुई है। यह नवमालिका आम से मिल गई है। अब मैं इसकी ओर से और तेरी ओर से चिन्तामुक्त हो गया हूं।

शकुन्तला—(सख्यौ प्रति) हला, एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः।

सख्यौ—अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः। (इति वाष्पं विहरतः।)

काश्यपः—अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्त्तव्या शकुन्तला। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

शकुन्तला—तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरामृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ।

काश्यपः—नेदं विस्मरिष्यामः।

शकुन्तला—(गतिभङ्गं रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते। (इति परावर्तते।)

काश्यपः—वत्से,

शब्दार्थ—द्वयोः युवयोः = तुम दोनों के। निक्षेपः = छोड़ती हूँ। ननु = क्योंकि। भवतीभ्यामेव = तुम दोनों को ही। स्थिरीकर्त्तव्या = धैर्य बंधाओ। एषोटजपर्यन्त-चारिणी = यह कुटी के पास विचरण करने वाली। गर्भमन्थरा = गर्भ के कारण शिथिलगति। अनघप्रसवा = सुख से प्रसव। विसर्जयिष्यथ = भेजियेगा। नेदं = हम इसे नहीं। गतिभङ्ग = गति में अवरोध का। निवसने = वस्त्र में। सज्जते = खींच रहा है। परावर्तते = पीछे की ओर मुड़ती है ।

हिन्दी रूपान्तर—**शकुन्तला**—(दोनों सखियों से) सखियो, इसको तुम दोनों के हाथ में धरोहर के रूप में छोड़ती हूँ।

दोनों सखियाँ—हम दोनों को किसके हाथ में सौंपती हो। (दोनों आँसू बहाती हैं।)

काश्यप—अनसूया, तुम लोग मत रोओ, क्योंकि तुम दोनों को ही चाहिए कि शकुन्तला को धैर्य बँधाओ।

शकुन्तला—हे तात, कुटी के पास विचरण करने वाली, गर्भ के कारण शिथिलगति, इस मृगी के जब सुख से सन्तानोत्पत्ति हो जाये, तब इस शुभ समाचार की सूचना देने वाले किसी व्यक्ति को मेरे पास भेजियेगा।

काश्यप—इसे हम नहीं भूलेंगे।

शकुन्तला—(गति में अवरोध का अभिनय करके) यह कौन मेरे वस्त्र खींच रहा है। (पीछे की ओर मुड़ती है।)

काश्यप—पुत्री,

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां,
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टि परिवर्धितको जहाति,
सोऽयं न पुत्र कृतकः पदवीं मृगस्ते॥ १४ ॥

***शकुन्तला*—वत्स, किं सहवास परित्यागिनीं मामनुसरसि। अचिर-प्रसूतया जनन्या बिना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयति। निवर्तस्व तावत्।** **(इति रुदती प्रस्थिता।)**

अन्वय १४—यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे त्वया व्रणविरोपणम्इङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत् स अयं श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः मृगः ते पदवीं न जहाति।

शब्दार्थ—व्रणविरोपणम् = घावों को भरने वाला। इङ्गुदीनां = हिंगोट का तेल। न्यषिच्यत-लगाया। कुशसूचिविद्धे = कुशों के अग्रभाग से विंधे हुए। श्यामाक = साँवा, चावल। मुष्टि = मुट्ठियों से। परिवर्धित = पाला हुआ। जहाति = छोड़ रहा है। निवर्तस्व = लौट जाओ।

संस्कृत व्याख्या १४—यस्य मृगस्य, कुशसूचिविद्धे—कुशानां दर्भाणां सूचिभिः तीक्ष्णाग्रभागैः विद्धे क्षते, मुखे—आस्ये, त्वया—दयार्द्रभावया शकुन्तलया, व्रण-विरोपणं—व्रणानां क्षतानां विरोपणं विशोषकम्, इङ्गुदीनां—तापसतरूणाम्, तैलं—स्नेहः, न्यषिच्यत्—निषिक्तम्, सोऽयं—स एषः, श्यामाकमुष्टिपरिवर्धित—श्यामाकानां वन्यधान्यानां मुष्टिभिः परिवर्धितकः संपोषितः, पुत्रकृतकः—पुत्रवत् स्वीकृतः, मृगः—हरिणः, ते—शकुन्तलायाः, पदवीं—मार्गम्, न जहाति—न परित्यज़ति।

प्रसंग—शकुन्तला की विदायी के अवसर एक मृगशावक उसके वस्त्र का छोर पकड़ लेता है। उसी हरिण के सम्बन्ध में यहाँ पर ऋषि कण्व शकुन्तला से कह रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—जिसके कुशा के काटों से छिदे हुए मुंह में तुमने घावों को भरने वाली हिंगोट का तेल लगाया था वही यह साँवा की मुट्ठियों से पाला हुआ और पुत्र के समान हरिण तुम्हारा मार्ग नहीं छोड़ रहा है॥ १४ ॥

शकुन्तला—पुत्र, मुझे साथ छोड़कर जाने वाली के पीछे पीछे तूं कहाँ जा रहा है। अपने जन्म के कुछ ही समय बाद मृत माता के बिना तुम पाले गये हो। इस समय भी मुझसे वियुक्त तुमको पिता जी पालेंगे। अतः लौट जाओ।

(रोती हुई प्रस्थान करती है।)

शकुन्तला—(सख्यौ प्रति) हला, एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः।

सख्यौ—अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः। (इति वाष्पं विहरतः।)

काश्यपः—अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्त्तव्या शकुन्तला।　　(सर्वे परिक्रामन्ति।)

शकुन्तला—तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरामृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ।

काश्यपः—नेदं विस्मरिष्यामः।

शकुन्तला—(गतिभङ्गं रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते। (इति परावर्तते।)

काश्यपः—वत्से,

शब्दार्थ—द्वयोः युवयोः = तुम दोनों के। निक्षेपः = छोड़ती हूँ। ननु = क्योंकि। भवतीभ्यामेव = तुम दोनों को ही। स्थिरीकर्त्तव्या = धैर्य बंधाओ। एषोटजपर्यन्त-चारिणी = यह कुटी के पास विचरण करने वाली। गर्भमन्थरा = गर्भ के कारण शिथिलगति। अनघप्रसवा = सुख से प्रसव। विसर्जयिष्यथ = भेजियेगा। नेदं = हम इसे नहीं। गतिभङ्ग = गति में अवरोध का। निवसने = वस्त्र में। सज्जते = खींच रहा है। परावर्तते = पीछे की ओर मुड़ती है ।

हिन्दी रूपान्तर—**शकुन्तला**—(दोनों सखियों से) सखियो, इसको तुम दोनों के हाथ में धरोहर के रूप में छोड़ती हूँ।

दोनों सखियाँ—हम दोनों को किसके हाथ में सौंपती हो। (दोनों आँसू बहाती हैं।)

काश्यप—अनसूया, तुम लोग मत रोओ, क्योंकि तुम दोनों को ही चाहिए कि शकुन्तला को धैर्य बँधाओ।

शकुन्तला—हे तात, कुटी के पास विचरण करने वाली, गर्भ के कारण शिथिलगति, इस मृगी के जब सुख से सन्तानोत्पत्ति हो जाये, तब इस शुभ समाचार की सूचना देने वाले किसी व्यक्ति को मेरे पास भेजियेगा।

काश्यप—इसे हम नहीं भूलेंगे।

शकुन्तला—(गति में अवरोध का अभिनय करके) यह कौन मेरे वस्त्र खींच रहा है।　　(पीछे की ओर मुड़ती है।)

काश्यप—पुत्री,

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां,
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टि परिवर्धितको जहाति,
सोऽयं न पुत्र कृतकः पदवीं मृगस्ते॥ १४ ॥

***शकुन्तला*—वत्स, किं सहवास परित्यागिनीं मामनुसरसि। अचिर-प्रसूतया जनन्या बिना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयति। निवर्तस्व तावत्।** **(इति रुदती प्रस्थिता।)**

अन्वय १४—यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे त्वया व्रणविरोपणम्इङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत् स अयं श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः मृगः ते पदवीं न जहाति।

शब्दार्थ—व्रणविरोपणम् = घावों को भरने वाला। इङ्गुदीनां = हिंगोट का तेल। न्यषिच्यत-लगाया। कुशसूचिविद्धे = कुशों के अग्रभाग से विंधे हुए। श्यामाक = साँवा, चावल। मुष्टि = मुट्ठियों से। परिवर्धित = पाला हुआ। जहाति = छोड़ रहा है। निवर्तस्व = लौट जाओ।

संस्कृत व्याख्या १४—यस्य मृगस्य, कुशसूचिविद्धे—कुशानां दर्भाणां सूचिभिः तीक्ष्णाग्रभागैः विद्धे क्षते, मुखे—आस्ये, त्वया—दयार्द्रभावया शकुन्तलया, व्रण-विरोपणं—व्रणानां क्षतानां विरोपणं विशोषकम्, इङ्गुदीनां—तापसतरूणाम्, तैलं—स्नेहः, न्यषिच्यत्—निषिक्तम्, सोऽयं—स एषः, श्यामाकमुष्टिपरिवर्धित—श्यामाकानां वन्यधान्यानां मुष्टिभिः परिवर्धितकः संपोषितः, पुत्रकृतकः—पुत्रवत्, स्वीकृतः, मृगः—हरिणः, ते—शकुन्तलायाः, पदवीं—मार्गम्, न जहाति—न परित्यज़ति।

प्रसंग—शकुन्तला की विदायी के अवसर एक मृगशावक उसके वस्त्र का छोर पकड़ लेता है। उसी हरिण के सम्बन्ध में यहाँ पर ऋषि कण्व शकुन्तला से कह रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—जिसके कुशा के काटों से छिदे हुए मुंह में तुमने घावों को भरने वाली हिंगोट का तेल लगाया था वही यह साँवा की मुट्ठियों से पाला हुआ और पुत्र के समान हरिण तुम्हारा मार्ग नहीं छोड़ रहा है॥ १४ ॥

शकुन्तला—पुत्र, मुझे साथ छोड़कर जाने वाली के पीछे पीछे तूं कहाँ जा रहा है। अपने जन्म के कुछ ही समय बाद मृत माता के बिना तुम पाले गये हो। इस समय भी मुझसे वियुक्त तुमको पिता जी पालेंगे। अतः लौट जाओ।

(रोती हुई प्रस्थान करती है।)

काश्यपः—

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं,
वाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे,
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति॥ १५ ॥

शार्ङ्गरव—भगवन्, ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिपत्तुमर्हति।

काश्यपः—तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः।

(सर्वे परिक्रम्य स्थिताः।)

अन्वय १५—उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरुद्धवृत्तिं वाष्पं स्थिरतया विरतानुबन्धं कुरु। अलक्षितनतोन्नत भूमिभागे अस्मिन् मार्गे ते पदानि खलु विषमीभवन्ति।

शब्दार्थ—उत्पक्ष्मणोः = ऊपर उठी हुई बरौनी से युक्त। उपरुद्धवृत्तिम् = दर्शन शक्ति को रोकने वाले। विरतानुबन्धम् = जिसका प्रवाह रुक गया है ऐसा। अलक्षित = नहीं देखा है। नतोन्नत = ऊंचा नीचा। विषमीभवन्ति = लड़खड़ा रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—उत्पक्ष्मणोः—उद्गतानि पक्ष्माणि नेत्रलोमानि ययोः तयोः, नयनयोः—नेत्रयोः उपरुद्धवृत्तिम्—उपरुद्धा प्रतिहता वृत्तिः दर्शन व्यापारो येन तम्, वाष्पम्—अश्रुसलिलम्, स्थिरतया—धैर्येण, विरतानुबन्धम्—विरतः निवृत्तः अनुबन्धः प्रवाहः यस्य तादृशम्, कुरु—विधेहि। अलक्षितनतोन्नत-भूमिभागे—अलक्षितः अदृष्टः नतः निम्नः उन्नतः उत्थितश्च भूमिभागः भूदेशः यस्मिन् तादृशे, अस्मिन्—एतस्मिन्, मार्गे—पथि, ते—तव, पदानि—चरणविन्यासाः, विषमीभवन्ति—नतोन्नताः भवन्ति।

प्रसंग—काश्यप ऋषि शकुन्तला को अत्यन्त संवेदनशील हृदय से आँसू पोछने के लिये कह रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—**काश्यपः**—ऊपर उठी हुई वरौनी से युक्त नेत्रों की दर्शनशक्ति को रोकने वाले आंसुओं को पोंछ डालो। क्योंकि ऊंची नीची भूमि को न देखने के कारण इस मार्ग में तुम्हारे पैर वास्तव में लड़खड़ा रहे हैं।

शार्ङ्गरव—भगवन, प्रिय व्यक्ति को जलाशय तक पहुंचा कर लौट जाना चाहिये, ऐसा सुना है। तो यह सरोवर का तट है। यहाँ पर सन्देश देकर लौटना चाहिए।

काश्यप—तो हम इस पीपल वृक्ष की छाया में बैठते हैं।

(सब लोग चारों ओर घूमकर खड़े हो जाते हैं।)

काश्यपः—(आत्मगतम्) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूप-मस्माभिः संदेष्टव्यम्। (इति चिन्तयति।)

शकुन्तला—(जनान्तिकम्) हला, पश्य। नलिनी पत्रान्तरितमपि सहचरम् पश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति, दुष्करमहं करोमीति।

अनसूया—सखि, मैवं मन्त्रयस्व।

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।
गुर्वपि विरह दुःखमाशाबन्धः साहयति ॥ १६ ॥

अन्वय १६—एषा अपि प्रियेण विना विषाददीर्घतरां रजनीं गमयति। आशाबन्धः गुरुः अपि विरहदुःखं साहयति।

शब्दार्थ—आत्मगतम् = मन में। संदेष्टव्यम् = सन्देश भेजना। विषाददीर्घतराम् = दुःख के कारण अधिक। गुरु अपि = कठोर, असह्य। साहयति = सहन करा देता है।

संस्कृत व्याख्या—एषा—चक्रवाकी अपि, प्रियेण बिना—पतिं विना, विषाद दीर्घतराम्—विषादेन दुःखेन दीर्घतराम् अधिक दीर्घत्वेन प्रतीयमानाम्, रजनीं—रात्रिम्, गमयति—यापयति। आशाबन्धः—आशायाः बन्धनम्, गुरु—असह्यम् अपि, विरह दुःखम्—वियोगपीडाम्, साहयति—सहनयोग्यं करोति।

हिन्दी अनुवाद—(मन में) माननीय राजा दुष्यन्त के पास कौन-सा सन्देश भेजना ठीक होगा। (ऐसा सोचते हैं।)

शकुन्तला—(हाथ की ओट में) सखी, देखो। कमलिनी के पत्ते की ओट में छिपे हुए अपने चकवे को न देख सकने से यह चकवी कैसी व्याकुल होकर चिल्ला रही है। मैं कठिन काम कर रही हूं।

अनसूया—सखी, ऐसा नहीं सोचना चाहिये।

प्रसंग—अनसूया शकुन्तला को ढाढ़स बँधाते हुए कहती है कि दुःख के बाद सुख निश्चित है। आशा ही मिलन के लिये परम प्रकाश है।

यह चकवी विरह की लम्बी रातों को पति के बिना अकेली काट देती है, क्योंकि विरह के समय भी इसे यह आशा बनी रहती है कि प्रातः काल तो मिलन हो ही जायेगा॥ १६ ॥

काश्यपः—शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः शार्ङ्गरव—आज्ञापयतु भवान्।

काश्यपः—अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः,
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ १७ ॥

अन्वय १७—संयमधनान् अस्मान् आत्मनः उच्चैः कुलं च, त्वयि अस्याः कथमपि अबान्धवकृतां तां स्नेहप्रवृत्तिं च साधु विचिन्त्य, त्वया इयं दारेषु सामान्य- प्रतिपत्तिपूर्वकं—दृश्या। अतः परं भाग्यायत्तम्, तत् खलु वधू बन्धुभिः न वाच्यम्।

शब्दार्थ—पुरस्कृत्य = आगे करके। वक्तव्यः = कहना। अबान्धवकृतां = बन्धुजनों के प्रयत्न के बिना ही प्रतिपत्ति = गौरव।

संस्कृत व्याख्या—काश्यप—संयमधनान्—संयमः इन्द्रियनिग्रहः अस्मान्—तपस्विनः, आत्मनः—स्वस्य, उच्चैः अतिगौरवास्पदम्, कुलं—वंशं च, त्वयि—त्वद्विषये, अस्याः—शकुन्तलायाः, कथमपि—केनापि रूपेण, अबान्धवकृतां— बन्धुजनप्रयत्नं विनैव घटिताम्, तां—स्वाभाविकीम्, स्नेहप्रवृत्तिं— प्रेमसंचारम्, साधु—सम्यक्तया, विचिन्त्य—विचार्थ, त्वया—नृपेण इयं— शकुन्तला, दारेषु—स्त्रीषु, सामान्य प्रतिपत्तिपूर्वकमियं—सामान्या तुल्या प्रतिपत्तिः गौरवम् तत्पूर्वकम, दृश्या—दर्शनीया। अतः परम्—अतोऽग्रे, भाग्यायत्तं—दैवाधीनम्, तत् खलु—निश्चयेन, वधूबन्धुभिः—कन्यासंबन्धिभिः, न वाच्यं—न कथनीयम्।

हिन्दी अनुवाद—काश्यप—शार्ङ्गरव, तुम शकुन्तला को आगे करके मेरी ओर से राजा से ऐसा कहना।

शार्ङ्गरव—आप आज्ञा दीजिये।

प्रसंग—यहाँ पर काश्यप ऋषि अपने शिष्य शार्ङ्गरव से कहते हैं कि शकुन्तला को राजा के सामने प्रस्तुत करके उनको मेरा यह सन्देश दे देना।

काश्यप—संयम ही जिसका धन है ऐसे हम तपस्वियों तथा अपने उच्च कुल का विचारकर आप द्वारा अपने आप इस कन्या से विवाह कर लिया है, इन सब बातों का ध्यान करके आप कम से कम दूसरी रानी के समान शकुन्तला का आदर अवश्य कीजिएगा। इससे बढ़कर इसे जो सौभाग्य मिले वह इसके भाग्य की बात है। उसके लिये हम कन्या के बान्धव लोग भला क्या कह सकते हैं।

शार्ङ्गरव—गृहीतः सन्देशः। *काश्यप*—वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीयाऽसि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञ वयम्।

शार्ङ्गरव—न खलु धीमतां कश्चिद् विषयो नाम।

काश्यपः—सात्वमितः पतिकुलं प्राप्य—

शुश्रूषस्व गुरून कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो: वामाः कुलस्याधयः ॥ १८ ॥

अन्वय १८—गुरुन् शुश्रूषस्व सपत्नीजने प्रियसखीवृत्तिं कुरु, विप्रकृता अपि रोष- णतया भर्तुः प्रतीपं मास्म गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणाभव। भाग्येषु अनुत्सेकिनी। एवं युवतयः गृहिणीपदं यान्ति, वामा कुलस्य आधयः।

शब्दार्थ—वनकसौ = वनवासी होते हुए भी। धीमतां = विद्वानों के लिये। शुश्रूषस्व = सेवा करना। विप्रकृता अपि = तिरस्कृत होने पर भी। रोषणतया = क्रोध के आवेश में। मा स्म गमः = मत करना। भूयिष्ठं = अत्यधिक। दक्षिणा = उदार। परिजने = आश्रितों पर। अनुत्सेकिनी = गर्वरहित। यान्ति = प्राप्त करती हैं। वामाः = विपरीत चलने वाली स्त्रियाँ। आधयः = दुःख का कारण होती हैं।

संस्कृत व्याख्या—गुरून—श्वशुरादीन्, शुश्रूषस्व—सेवस्व। सपत्नीजने—सपत्नी वर्गे, प्रियसखीवृत्तिं—प्रिय सख्याः व्यवहारम्, कुरु—विधेहि। विप्रकृता अपि—तिरस्कृता अपि, रोषणतया—क्रोधावेशेन, भर्तुः—पत्युः, प्रतीपं—प्रति-कूलम्, मास्म गमः—न याहि। परिजने—आश्रितवर्गे, भूयिष्ठम्—अत्यधिकं, दक्षिणा-उदारा, भाग्येषु—समृद्धिषु, अनुत्सेकिनी—गर्व रहिता। एवं—इत्थमाचरणेन, युवतयः—रमण्यः, गृहिणीपदं—गृहलक्ष्मीस्थानम्, यान्ति प्राप्नुवन्ति। वामाः—विपरीता-स्त्रियः, कुलस्य—वंशस्य, आश्रयः—दुःखकारणानि भवन्ति। रूपक अलंकारः।

हिन्दी अनुवाद—शार्ङ्गरव—सन्देश समझ गया।

काश्यप—पुत्री, तुम्हें इस समय कुछ शिक्षा देनी है। वनवासी होते हुए भी हम लौकिक व्यवहारों को जानते हैं।

शार्ङ्गरव— विद्वानों के लिये कोई विषय अज्ञात नहीं होता है।

प्रसंग—गृहस्थ आश्रम का उपदेश देते हुए काश्यप ऋषि शकुन्तला से कहते हैं।

काश्यपः— तुम यहाँ से पति गृह पहुँचकर—अपने गुरुजनों की सेवा करना , अपनी सौतों से प्रिय सखियों जैसा प्रेम रखना, पति द्वारा तिरस्कृत होने पर भी क्रोध करके उनसे झगड़ा मत कर बैठना, अपने दास दासियों के प्रति उदार होना, अपने सौभाग्य पर बहुत गर्व मत करना। इस प्रकार का आचरण करने वाली स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी होती हैं। इसके विपरीत चलने वाली कुल के लिये अभिशाप होती हैं

गौतमी—एतवान् वधूजनस्योपदेशः। जाते. एतत् खलु समवधारय।

काश्यपः—वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च।

शकुन्तला—तात, इत एव किं प्रियंवदाऽनुसूये सख्यौ निवर्तिष्येते।

काश्यपः—वत्से, इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति।

शकुन्तला—(पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि।

काश्यपः—वत्से, किमेवं कातराऽसि।

शब्दार्थ—एतवान = इतना ही। अवधारय = धारण कर लो। परिष्वजस्व = गले मिल लो। निवर्तिष्येते = लौट जायेंगी। प्रदेये = विवाह करना है। आश्लिष्य = गले लगाकर। अङ्कात = गोद से। परिभ्रष्टा = छूटी हुई। धारयिष्यामि = रह सकूंगी।

हिन्दी अनुवाद—गौतमी—इतना ही नववधुओं के लिये उपदेश होगा। पुत्री, ये सब बातें धारण कर लो।

काश्यप—पुत्री, मुझसे और अपनी सखियों से गले मिल लो।

शकुन्तला—तात, क्या प्रियंवदा और अनुसूया ये दोनों मेरी सखियाँ यहाँ से लौट जायेंगी।

काश्यप—पुत्री, इन दोनों का भी तो विवाह करना है। इनका वहाँ जाना उचित नहीं है। तुम्हारे साथ गौतमी जायेगी।

शकुन्तला—(पिता को गले लगाकर) अब मैं पिता जी की गोद से अलग होकर मलय पर्वत से उखाड़ी हुई चन्दन लता की तरह दूसरे देश में कैसे जीवित रह सकूंगी।

काश्यप—पुत्री, क्यों इस प्रकार अधीर हो रही हो।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे,
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं,
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥ १९ ॥
(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति।)

अन्वय १९—वत्से, त्वम् अभिजनवतः भर्तुः श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता, तस्य विभवगुरुभिः कृत्यैः प्रतिक्षणम् आकुला, अचिरात् प्राची इव अर्कं पावनं तनयं प्रसूय च ममविरहजां शुचं न गणयिष्यसि।

शब्दार्थ—अभिजनवतो = महाकुलीन। श्लाघ्ये = प्रशंसनीय। स्थिता = अधिष्ठित होकर। गृहिणीपदे = गृहस्वामिनी पद पर। विभव गुरुभिः = ऐश्वर्य के कारण। प्राचीवार्कम् = पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्य को जन्म देती है। प्रसूय = जन्म देकर।

संस्कृत व्याख्या—वत्से—हे पुत्रि, त्वम् अभिजनवतः—महाकुलीनस्य, भर्तुः—पत्युः, श्लाघ्ये—प्रशंसनीये, गृहिणीपदे—गृहलक्ष्मीस्थाने, स्थिता—अधिष्ठिता सती, तस्य—भर्तुः, विभवगुरुभिः—विभवैः समृद्धिभिः गुरुभिः महद्भिः, कृत्यैः—कार्यैः, प्रतिक्षणम्—प्रतिपलम्, आकुला—व्यस्ता सती, अचिरात्—शीघ्रमेव, प्राची— पूर्वादिक्, अर्कमिव—सूर्यमिव, पावनं—पवित्रम्, तनयं-पुत्रं, प्रसूय-उत्पाद्य च, मम-काश्यपस्य, विरहजां—वियोगोत्पन्नाम्, शुचं—शोकं, न गणयिष्यसि—न चिन्तयिष्यसि। अत्रोपमा अलंकारः।

प्रसंग—काश्यप ऋषि शकुन्तला को वियोग से उत्पन्न होने वाले दुःख को भूल जाने के लिये कहते हैं।

हिन्दी अनुवाद—पुत्री, तुम महाकुलीन पति के प्रशंसनीय गृहस्वामिनी पद पर अधिष्ठित होकर, ऐश्वर्य के कारण महत्वपूर्ण कार्यों में प्रतिक्षण व्यस्त होकर शीघ्र ही पूर्व दिशा में उत्पन्न सूर्य की भांति पवित्र पुत्र को जन्म देकर मेरे वियोग के दुःख को भूल जाओगी॥ १९ ॥

(शकुन्तला पिता के पैरों पर गिर पड़ती है।)

काश्यपः—यदिच्छामि ते तदस्तु।

शकुन्तला—(सख्यावुपेत्य) हला, द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्।

सख्यौ—(तथा कृत्वा) सखि, यदि नाम सराजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्, ततस्तस्मा इदमात्मनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय।

शकुन्तला—अनेन सन्देहेन वामाकम्पिताऽस्मि।

सख्यौ—मा भैषीः। अतिस्नेहः पापशंकी।

शार्ङ्गरव—युगान्तरमारूढः सविता। त्वरतामत्रभवती।

शकुन्तला—(आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) तात् कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये।

काश्यपः—श्रूयताम्—

शब्दार्थ—तदस्तु = वह पूर्ण हो। सख्यावुपेत्य = सखियों के पास पहुंचकर। सममेव = एक साथ ही। प्रत्यभिज्ञान = पहचानने में। मन्थरो = शिथिल। भैषीः = डरो। युगान्तरम् = दूसरे प्रहर में। त्वरताम् = शीघ्रता करें। अभिमुखी = मुंह करके। प्रेक्षिष्ये = देखूंगी।

हिन्दी अनुवाद—काश्यप—मैं तुम्हारे लिये जो चाहता हूं वह पूर्ण हो।

शकुन्तला—(सखियों के पास पहुंचकर) सखियों तुम दोनों मुझसे एक साथ गले मिलो। **दोनों सखियाँ**—(वैसा करके) सखी, यदि वह राजा यह पहचानने में कुछ शिथिल हो तो उसके अपने नाम से अंकित यह अंगूठी उसको दिखा देना।

शकुन्तला—तुम्हारे इस सन्देह से मैं घबड़ा गई हूँ।

दोनों सखियाँ—मत डरो। अत्यधिक प्रेम पाप की आशंका करता है।

शार्ङ्गरव—सूर्य दूसरे पहर में चढ़ गया है। आप शीघ्रता करें।

शकुन्तला—(आश्रम की ओर मुंह करके) तात, अब मैं फिर कब तपोवन को देखूंगी।

काश्यप—सुनो—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी,
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पित कुटुम्बभरेण सार्धं,
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥ २० ॥

अन्वय २०—चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा, अप्रतिरथं तनयं दौष्यन्तिं निवेश्य, तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धं शान्ते अस्मिन् आश्रमे पुनः पदं करिष्यसि।

शब्दार्थ—चिराय = बहुत दिनों तक। चतुरन्त = चारों समुद्र जिसकी सीमा है। दौष्यन्तिं = दुष्यन्त के पुत्र भरत। अप्रतिरथं = अद्वितीय वीर को। निवेश्य = सिंहासन पर बैठाकर। तदर्पित = उस पर डाला है। कुटुम्बभरेण = परिवार का भार। आश्रमेऽस्मिन् = इस तपोवन में।

संस्कृत व्याख्या—चिराय—बहुकालं यावत्, चतुरन्तमहीसपत्नी—चत्वारः समुद्राः अन्ताः प्रान्ताः यस्याः तादृश्याः मह्याः पृथिव्याः सपत्नी समानभर्तृका, भूत्वा, अप्रतिरथम्—अद्वितीयवीरम्, तनयं—पुत्रम्, दौष्यतिं—दुष्यन्तसुतं भरतम्, निवेश्य—राज्ये प्रतिष्ठाप्य, तदर्पितकुटुम्बभरेण—तस्मिन् अर्पितः न्यस्तः कुटुम्बस्य बन्धुवर्गस्य भरः भारः येन तादृशेन, भर्त्रा—पत्या दुष्यन्तेन, सार्धं—सह, शान्ते—निरुपद्रवे, अस्मिन् आश्रमे—अस्मिन् तपोवने, पुनः—भूयः, पदं—स्थानं, करिष्यसि—विधास्यसि।

प्रसंग—काश्यप ऋषि से जब शकुन्तला ने पूछा कि मैं इस तपोवन को फिर से कब देखूँगी, इस पर शकुन्तला को सान्त्वना देते हुए काश्यप ऋषि कहते हैं।

हिन्दी अनुवाद—बहुत दिनों तक चारों समुद्रों तक व्याप्त पृथ्वी की सपत्नी (सौत) होकर अपने अद्वितीय वीर पुत्र दौष्यन्ति को सिंहासन पर बिठाकर और कुटुम्ब का भार उसे सौंपकर तुम अपने पति के साथ इस शान्त तपोवन में फिर से आओगी।

गौतमी—जाते, परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्।

काश्यपः—वत्से, उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्।

शकुन्तला—(भूयः पितरमाश्लिष्य) तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्। तन्माऽतिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्य। *काश्यपः*—(सनिःश्वासम्)

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वार विरूढं नीवारबलिं विलोकयतः॥ २१ ॥

गच्छ। शिवास्ते पन्थानः सन्तु। (निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च।)

अन्वय २१—वत्से, त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम् एष्यति।

शब्दार्थ—जाते = पुत्री। परिहीयते = बीतता जा रहा है। निवर्तय = लौटाओ। वत्से = पुत्री। उपरुध्यते = रुक रहा है। विरुढम् = उगे हुए।

संस्कृत व्याख्या २१—वत्से—हे पुत्रि, त्वया—शकुन्तलया, रचितपूर्वं—पूर्वं प्राक् रचितं प्रदत्तम्, उटजद्वारविरूढं—उटजस्य द्वारे विरूढम् उत्पन्नम्, नीवारबलिं— नीवारस्य वन्यधान्यस्य बलिं पूजोपहारं, विलोकयतः—पश्यतः, मम—कण्वस्य, शोकः—विषादस्य, कथं नु—केन प्रकारेण, शमं—शान्तिं, एष्यति—प्राप्स्यति।

हिन्दी अनुवाद—गौतमी—पुत्री, हमारे प्रस्थान का समय बीतता जा रहा है। अपने पिता को लौटाओ। अथवा यह चिरकाल तक बार-बार उसी बात को कहती रहेगी। आप लौटिए।

काश्यप—पुत्री, मेरे तप का अनुष्ठान रुक रहा है।

शकुन्तला—(फिर पिता के गले लगकर) आपका शरीर तपस्या से अत्यन्त दुर्वल है। तो आप मेरे लिये बहुत अधिक दुःखी मत हों।

प्रसंग—काश्यप ऋषि करुणापूर्ण हृदय से शकुन्तला से कह रहे हैं।

काश्यप—(लम्बी सांस लेकर) हे पुत्री! तुम्हारे द्वारा पहले दिये गये और अब कुटी के द्वार पर उगे हुए नीवार के उपहार को देखते हुए मेरा शोक भला कैसे शान्त हो सकेगा।

जाओ। तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो।

(शकुन्तला और उसके साथ जाने वालों का प्रस्थान।)

सख्यौ—(शकुन्तलां विलोक्य) हा धिक्, हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या।

काश्यपः—(सनिःश्वासम्) अनसूये, गतवती वां सहचारिणी। निगृह्य शोकम् अनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

उभे—तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः।

काश्यपः—स्नेहप्रवृत्तिरेवं दर्शिनी। (सविमर्शं परिक्रम्य)। हन्त भोः शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः—

शब्दार्थ—अन्तर्हिता = ओझल हो गई। वनराज्या = वृक्षों की ओट में। सनिः-श्वासम्-लम्बी सांस लेकर। गतवती = चली गयी। सहचारिणी = सखी। निगृह्य = रोककर। अनुगच्छतं = पीछे। विरहितं = बिना। स्नेहप्रवृत्तिः = प्रेम का संचार। सविमर्शं = विचारमग्न से। विसृज्य = भेजकर। लब्धम् = प्राप्त हुई है।

हिन्दी अनुवाद—**दोनों सखियाँ**—(शकुन्तला को देखकर) हाय हाय! शकुन्तला तो वृक्षों की ओट में ओझल हो गयी।

काश्यप—(लम्बी सांस लेकर) अनसूये, तुम लोगों की सखी चली गई। शोक को रोककर मेरे पीछे आओ।

दोनों—तात, शकुन्तला के बिना यह आश्रम सूना हो रहा है। इसमें कैसे प्रवेश करें।

काश्यप—प्रेम में ऐसा ही होता है। (विचारमग्न अवस्था में घूम करके।) ओह, शकुन्तला को पति के घर भेजकर मुझे आज मानसिक शान्ति मिली। क्योंकि—

अर्थो हि कन्या परकीय एव,
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं,
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥ २२ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति चतुर्थोऽङ्कः।

अन्वय २२—कन्या हि परकीयः एव अर्थः, अद्य तां परिग्रहीतुः संप्रेष्य मम अयम् अन्तरात्मा प्रत्यर्पितन्यासः इव प्रकामं विशदः जातः।

शब्दार्थ—परकीय = पराई। संप्रेष्य = भेजकर। प्रकामम् = अत्यधिक। प्रत्यर्पित = पुनः लौटाने पर। निष्क्रान्ताः = प्रस्थान।

संस्कृत व्याख्या—कन्या—दुहिता, हि—निश्चयेन, परकीय एव—परस्यैव, अर्थः—धनमस्ति। अद्य तां—शकुन्तलाम्, परिग्रहीतुः—परिणेतुः समीपे, संप्रेष्य—प्रस्थाप्य, मम—कण्वस्य, अयम्—एषः, अन्तरात्मा—मनः, प्रत्यर्पितन्यास—प्रत्यर्पितः पुनरर्पितः, न्यासः—निंक्षेपः येन सः, इव—तद्वत, प्रकामम्—अत्यधिकम्, विशदः—निर्मलः, प्रसन्नः, जातः—संपन्नः। उत्प्रेक्षाऽलंकारः।

प्रसंग—काश्यप ऋषि यहाँ पर शकुन्तला को बिदा करके अपने मन में यह विचार कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—कन्या वस्तुतः पराई सम्पत्ति है। आज उसको पति के पास भेजकर मेरी यह अन्तरात्मा उसी प्रकार प्रसन्न हो रही है जैसे धरोहर को लौटाने पर धरोहर रखने वाले का मन अत्यधिक प्रसन्न होता है।

(सबका प्रस्थान।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त

महत्वपूर्ण सूक्तियों की सन्दर्भ सहित हिन्दी में व्याख्या

१. सूक्ति—विस्त्रब्धाभव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति।

सन्दर्भ—प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य पुस्तक अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भिक अंश से उद्धृत की गई है। इसके रचयिता महाकवि कालिदास हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति में प्रियंवदा का कथन है। अनुसूया अपनी सखी शकुन्तला के पक्ष में राजा दुष्यन्त के आचरण के सम्बन्ध में सन्देह प्रगट करती है। राजा दुष्यन्त अन्तःपुर में पहुँचकर यहाँ की बातों को याद करेंगे अथवा नहीं। इस पर शकुन्तला की दूसरी सखी प्रियंवदा आत्मविश्वास के साथ अनुसूया से यहाँ पर कहती है।

व्याख्या—प्रियंवदा कहती है कि यहाँ चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उस प्रकार की सुन्दर आकृतियाँ गुणों से रहित नहीं होती हैं। पिता (महर्षि कण्व) इस समय इस समाचार को सुनकर न जाने क्या सोचेंगे। प्रियंवदा के कहने का तात्पर्य यह है कि महान् विभूतियाँ रूपवान होने के साथ गुणों से भी सम्पन्न होती हैं। ऐसे में यह आशंका करना कि राजा शकुन्तला को भूल जायेगा, केवल भ्रम है।

२. सूक्ति—गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः।

सन्दर्भ—प्रस्तुत सूक्ति अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क से ली गई है। इसके रचयिता महाकवि कालिदास हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति में शकुन्तला की सखी अनसूया अपनी दूसरी सखी प्रियंवदा से कहती है। प्रियंवदा को आशङ्का है कि गान्धर्व विधि से शकुन्तला का विवाह होने के बाद महर्षि कण्व न जाने क्या सोचेंगे। इस कथन को निर्मूल कहती हुई अनसूया कहती है।

व्याख्या—अनसूया कहती है कि गुणवान व्यक्ति को कन्या देनी है, यह उनका प्रथम संकल्प है। भाव यह है कि प्रत्येक कन्या के माता-पिता का यह प्रथम परम कर्त्तव्य होता है कि वह अपनी पुत्री के लिये एक श्रेष्ठ, सुयोग्य, गुणवान वर का चयन करें। यदि उस माता-पिता के संकल्प को भाग्य ही पूरा कर देता है तो यह समझ लेना चाहिये कि गुरुजन (अर्थात् माता-पिता) बिना

प्रयत्न के ही कृतार्थ हो गये। माता पिता की यही हार्दिक अभिलाषा होती है कि मेरी पुत्री जीवन पर्यन्त आनन्दमय, सुखमय, मंगलमय गृहस्थ जीवन और दाम्पत्य जीवन का सुख उपभोग करे।

३. सूक्ति—स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्, कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति में नेपथ्य से महर्षि दुर्वासा का शकुन्तला को दिये गये शाप की आवाज आती है। शकुन्तला अपने पति के विरह में दुःखी अपने आप को भूली हुई आश्रम में बैठी है। इसी समय महर्षि दुर्वासा आते हैं। महर्षि दुर्वासा ने अपने आने का परिचय शकुन्तला को दिया। शकुन्तला ने ध्यान नहीं दिया और न मुनि का यथोचित स्वागत तथा अतिथि सत्कार किया। इस पर अति क्रोधी दुर्वासा मुनि ने अपमानित होकर शकुन्तला को शाप दे दिया।

व्याख्या—महर्षि दुर्वासा ने शकुन्तला को शाप दिया कि ओह! अतिथि का अपमान करने वाली! एकाग्रचित से जिसका स्मरण करती हुई तू मुझ तपस्वी की उपस्थिति नहीं जान पा रही है, वह तुम्हारे स्मरण कराने पर भी तुझे उसी प्रकार भूल जायेगा जैसे कोई उन्मत्त प्रमादी मनुष्य को स्मरण दिलाने पर भी पहले कही हुई बात का स्मरण नहीं होता है।

४. सूक्ति—कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति।

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति में अनसूया का कथन है। शकुन्तला को शाप देकर मुनि दुर्वासा लौट जाते हैं। अनसूया और प्रियंवदा शाप के शब्द को सुन लेती हैं। वे कहती हैं कि यह अति क्रोधी महर्षि दुर्वासा हैं। इसके बाद कवि अपनी भावना को इस प्रकार व्यक्त कर रहा है।

व्याख्या—अनसूया और प्रियंवदा नाम की शकुन्तला की दोनों सखियाँ मुनि दुर्वासा के शाप के शब्द को सुनकर बहुत घबरा जाती हैं। वे कहती हैं कि अग्नि के अतिरिक्त और कौन जला सकता है। शास्त्रों में क्रोध और शाप के शब्द को अग्नि के समान माना गया है। दुर्वासा का क्रोधवश शाप का शब्द अग्नि के समान जलाने वाला है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि दुर्वासा के क्रोध से ही दुर्योधन कुल का नाश हो गया था, अतः महर्षि दुर्वासा द्वारा दिया गया यह शाप अन्यन्त कठोर और दारुण है।

५. सूक्ति—रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी।

प्रसंग—अनसूया प्रियंवदा से कहती है। अभिशप्त शकुन्तला की स्थिति एवं दशा का ज्ञान करती हुई दोनों सखियाँ चिन्तित हैं। वे महर्षि दुर्वासा के सुलभ कोप के प्रभाव से भलीभाँति परिचित हैं। शकुन्तला को दुर्वासा के शाप का ज्ञान नहीं है। दोनों सखियाँ दुर्वासा के शाप को शकुन्तला को किसी भी अवस्था में नही बताना चाहती हैं।

व्याख्या—प्रस्तुत सूक्ति में अनसूया प्रियंवदा से कहती है कि दुर्वासा के शाप की बातें तुम्हारे मुँह तक ही सीमित रहें। स्वभाव से कोमल प्रिय सखी शकुन्तला के जीवन की रक्षा करनी चाहिये।

यदि शकुन्तला दुर्वासा के शाप को जान जायेगी तो उसके लिये यह दुःख सहना असह्य हो जायेगा। शकुन्तला स्वभाव से अत्यधित नम्र और कोमल है। आपत्ति आने पर हम सखियों को अपनी सखी का साथ कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

६. सूक्ति—को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति।

प्रसंग—प्रियंवदा का कथन है। मुनि दुर्वासा शकुन्तला को शाप देकर लौट जाते हैं। अनसूया दुर्वासा के शाप को छिपाये रखने तथा अपने तक सीमित रखने के लिये प्रियंवदा से कहती है। इसी बात पर प्रियंवदा अपने विचार यहाँ पर प्रकट करती है।

व्याख्या—कौन नवमालिका को गर्म जल से सींचेगा। भाव यह है कि सुकुमार एवं कोमल नवमालिका के समान शकुन्तला का हृदय भी अत्यन्त सरस स्वभाव का है। नवमालिका गर्म जल से झुलस सकती है, उसी प्रकार शकुन्तला भी ऋषि के शाप को सुनकर झुलस जायेगी। दुर्वासा के शाप के वचनों को सुनकर शकुन्तला नष्ट हो जायेगी, इसका ध्यान रखते हुए प्रियंवदा कहती है कि कोई भी समझदार प्राणी ऐसी गम्भीर क्रिया नहीं करेगा।

७. सूक्ति—तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां, लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।

प्रसंग—प्रवास से लौटे हुए पूजनीय कण्व ऋषि ने अपने एक शिष्य को आदेश दिया कि क्या समय है। कितनी रात अभी बाकी है। शिष्य ने बाहर आकर देखा कि सबेरा हो गया है। क्योंकि एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है दूसरी ओर अरुण को आगे किये हुए सूर्य उदय हो रहा है। एक ही

समय में दो तेजों के अस्त और उदय की दशा को देखकर शिष्य के मन में यह विचार आता है।

व्याख्या—शिष्य विचार करता है कि यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा मानों अपने दशा-विशेषों में नियंत्रित हो रहा है। चन्द्रमा का अस्त होना और सूर्य का उदय होना सांसारिक जीवों को शिक्षा देता है कि कहीं पर कोई दुःखी है तो दूसरी जगह कोई सुखी है। सुख और दुःख दोनों ही किसी भी मनुष्य के जीवन में स्थायी रूप में नहीं रहते हैं। धूप और छाया की भाँति ये आते जाते रहते हैं। यह ईश्वरीय नियम है।

८. सूक्ति—इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य, दुःखानिनूनमतिमात्रसुदुःसहानि॥

प्रसंग—शिष्य अपने मन में विचार करता है कि चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर वही कुमुदिनी संस्मरणीय शोभा से युक्त होकर मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं करती है। इसी सन्दर्भ में शिष्य यह भाव व्यक्त कर रहा है।

व्याख्या—शिष्य विचार कर कहता है कि निश्चित ही स्त्रियों को अभीष्ट व्यक्ति के प्रवास से उत्पन्न दुःख अत्यन्त असह्य हो जाते हैं। कठिन विरह वेदना से युक्त शकुन्तला निश्चित ही अपने प्रियतम राजा दुष्यन्त के प्रवास से उत्पन्न दुःख नहीं सहन कर पा रही है। वियोगजन्य कष्ट बहुत ही पीड़ादायक होता है।

९. सूक्ति—दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्।

प्रसंग—अनसूया चिन्तित अवस्था में है कि इतने दिन बीत गये किन्तु राजा दुष्यन्त ने एक भी पत्र नहीं लिखे। अब उसे याद दिलाने के लिये उसके पास अगूँठी भेजनी ही पड़ेगी।

व्याख्या—अनसूया कहती है कि इस समय कामदेव की इच्छा पूर्ण हो। बहुत समय बीत गया है। राजा को ध्यान नहीं। हमलोग तपस्वी हैं। हम अपने दुःख को दूर करने के लिये सहायता भी मागें तो किससे माँगे। कष्ट सहन करने वाले तपस्वियों के लिये किससे प्रार्थना करें। हमारी कौन सुनेगा। हमारे पास कोई भी सबल, शक्तिमान प्राणी भी तो नहीं है जिससे हम अपनी बातें कह सकें।

१०. सूक्ति—दिष्ट्याधूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता।

प्रसंग—कण्व की अनुपस्थिति में राजा दुष्यन्त शकुन्तला से गान्धर्व विवाह करके राजधानी लौट गये। प्रवास से लौटने पर कण्व को यह सूचना प्राप्त हुई।

महर्षि कण्व ने गान्धर्व विवाह का स्वागत किया। यहाँ पर ऋषि कण्व के वचनों को अनसूया प्रियंवदा से कहती है।

व्याख्या—सौभाग्य से धुएं से व्याकुल दृष्टि वाले यजमान की आहुति ठीक अग्नि में ही पड़ी। पुत्री, योग्य शिष्य को दी गई विद्या की तरह तुम मेरे लिये अशोचनीय हो गयी हो। शकुन्तला दुष्यन्त के पास पहुँच गयी है, यह मेरे लिये परम सौभाग्य की बात है। यह सौभाग्य ही था कि उसने एक सत्पात्र को ग्रहण किया।

११. सूक्ति—पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।

प्रसंग—शकुन्तला के पति गृहगमनकाल में काश्यप का हृदय भावी वियोगजन्य कष्ट से अभिभूत हो उठा। मन में वेदना, मस्तक में आँधी और आँखों में आँसू की बरसात लिये महर्षि काश्यप की दृष्टि यहाँ पर चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो गयी है। कवि ने ऋषि काश्यप के माध्यम से यहाँ पर एक सार्वभौमिक मनोवैज्ञानिक सत्य के पक्ष को उद्घाटित किया है।

व्याख्या—काश्यप ऋषि मन में विचार करते हैं कि आज शकुन्तला बिदा होगी, इसलिये मेरा हृदय दुःख से भर गया है।

आँसुओं को बहने से रोकने से गला भर आया है। दृष्टि चिन्ता के कारण जड़ हो गई है। स्नेह के कारण जब मुझ बनवासी विरक्त मनुष्य के हृदय में इतनी व्याकुलता है तो गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग के दुःख से कितनी अधिक पीड़ा का अनुभव करते होंगे।

१२. सूक्ति—गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति।

प्रसंग—अनसूया अपनी प्रिय सखी शकुन्तला से अपनी मनोदशा को अभिव्यक्त कर रही है। आशा ही परम ज्योति है। आशा का सम्बल लेकर मनुष्य चिरकाल तक जी सकता है। आशा की ओट में मनुष्य कठिन से कठिन कष्ट को सहन कर सकता है।

व्याख्या—अनसूया कहती है कि यह चकवी विरह की लम्बी रातों को पति के बिना अकेले ही काट देती है। विरह के समय भी इसे यह आशा बनी रहती है कि सूर्योदय होगा, प्रातःकाल होगा, कमलकोष खिलेंगे। दुःख है तो सुख भी होगा, वियोग है तो संयोग अर्थात् मिलन भी सुनिश्चित है। आशा का बन्धन विरह के कठोर दुःख को भी सहन करा देता है।

१३. सूक्ति—भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः॥

प्रसंग—काश्यप ऋषि अपने शिष्य शार्ङ्गरव से कहते हैं। तपस्वी संयमी और धैर्यवान होते हैं। यहाँ पर काश्यप ऋषि ने अपने शिष्य के माध्यम से राजा दुष्यन्त के पास यह सन्देश प्रेषित किया है।

व्याख्या—काश्यप ऋषि कहते हैं कि संयम ही जिसका धन है ऐसे हम तपस्वियों तथा अपने उच्चकुल के विचारक आप द्वारा अपने आप इस कन्या से विवाह कर लिया है। इन सब बातों का ध्यान करके आप कम से कम अपनी अन्य पत्नियों के समान शकुन्तला का सम्मान अवश्य कीजिएगा। इससे बढ़कर इसे जो सौभाग्य मिले, वह इसके भाग्य की बात है। इसके लिये हम कन्या के बान्धव लोग भला क्या कह सकते हैं।

१४. सूक्ति—न खलु धीमतां कश्चिद् विषयो नाम।

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति में शार्ङ्गरव अपने गुरु के अपरिमित प्रभाव और शक्ति के विषय में कह रहा है। काश्यप ऋषि अपनी पुत्री शकुन्तला को कुछ शिक्षा देना चाहते हैं। काश्यप ऋषि कहते हैं कि बनवासी होते हुए भी हम लौकिक व्यवहार को भली-भाँति जानते हैं। इसी बात पर शार्ङ्गरव कह रहा है।

व्याख्या—शिष्य कहता है कि बुद्धिमान पुरुषों के लिये कोई भी वस्तु अज्ञात नहीं होती है। बुद्धिमान लोग अपने ज्ञान, तर्क और बुद्धि के बल से सब कुछ ज़ान लेते हैं। उनके लिये कोई भी वस्तु अज्ञेय और अनजान नहीं होती है।

१५. सूक्ति—यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयोः वामाः कुलस्याधयः॥

प्रसंग—महर्षि काश्यप अपने पति के घर जाते समय पुत्री शकुन्तला को नीतिविषयक उपदेश दे रहे हैं। वे शकुन्तला से कहते हैं कि तुम यहाँ से अपने पति के घर पहुँच कर अपने गुरुजनों की सेवा करना। अपनी सौतों से प्रिय सखियों जैसा प्रेम रखना, पति द्वारा तिरस्कृत होने पर भी क्रोधावेश में उनसे कलह मत कर बैठना, अपने दास-दासियों के प्रति उदार रहना, अपने सौभाग्य पर बहुत अधिक गर्व मत करना।

व्याख्या—शकुन्तला को उपदेश देने के बाद काश्यप ऋषि कहते हैं कि इसके अनुकूल आचरण करने से लाभ होता है, और प्रतिकूल व्यवहार करने से हानि होती है। आचरण करने वाली स्त्रियाँ, युवतियाँ गृहिणी के ऊँचे स्थान को प्राप्त कर लेती हैं और आचरण न करने वाली स्त्रियाँ कुल के लिये विपत्ति

का कारण होती हैं। लौकिक विषयों के ज्ञाता और अनुभवी महर्षि काश्यप के ये उपदेश आज भी हमारे जीवन में पूर्ण रूप से चरितार्थ होते हैं।

१६. सूक्ति—अतिस्नेहः पापशंकी।

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति में शकुन्तला जब पतिगृहगमन के पूर्व अपनी सखियों से विदायी लेती है, उस समय तक शकुन्तला को महर्षि दुर्वासा के शाप का कुछ भी ज्ञान नहीं है। अनसूया और प्रियंवदा नाम की दोनों सखियाँ दुर्वासा के दिये हुए शाप का स्मरण करके भावी अनिष्ट की आशंका करने लगती हैं।

व्याख्या—दोनों सखियाँ शकुन्तला से कहती हैं कि अत्यधिक प्रेम पाप की आशंका करता है। यदि राजा दुष्यन्त आपको न पहचाने उस समय उसके द्वारा दी गई अंगूठी को दिखा देना यह सुनकर शकुन्तला का हृदय काँपने लगता है। सखियाँ कहती हैं कि जिस व्यक्ति से अधिक स्नेह हो जाता है वह अत्यधिक स्नेह भावी किसी बड़े अनिष्ट की आशंका करा देता है। अत्यधिक भयभीत शकुन्तला को उसकी सखियाँ ढाढ़स बँधाती हैं, सान्त्वना देती हैं और पूर्ण रूप से आश्वस्त करती हैं।

१७. सूक्ति—अर्थो हि कन्या परकीय एव।

सन्दर्भ—प्रस्तुत सूक्तिपरक काव्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक से उद्धृत किया गया है। इसके रचयिता महाकवि कालिदास जी हैं।

प्रसंग—विचारमग्न अवस्था में महर्षि काश्यप कहते हैं कि शकुन्तला को पति के घर भेजकर मुझे आज मानसिक सुख-शान्ति और सन्तोष मिला है। यहाँ पर काश्यप ऋषि शकुन्तला को पति के घर विदा करने के बाद विचारमग्न दशा में कह रहे हैं।

व्याख्या—कन्या वास्तव में पराई सम्पत्ति है। आज उसे पति के पास भेजकर मेरी यह अन्तरात्मा उसी प्रकार आनन्दित हो रही है जैसे किसी व्यक्ति की धरोहर लौटाने पर धरोहर रखने वाले का मन अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है। पुत्री निश्चित रूप से प्रत्येक मनुष्य के पास धरोहर के रूप में रहती है। दाम्पत्यजीवन निर्वाह के लिये एक दिन उसे विवाहोपरान्त अपने पति के घर जाना ही है। ऋषि काश्यप के उपरोक्त विचार गम्भीर, विवेकपूर्ण और सर्वथा बोधगम्य हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्-चतुर्थोऽङ्कः (नाटक) पर आधारित महत्वपूर्ण प्रश्नों के संस्कृत में अपेक्षित लघूत्तरीय प्रश्न

प्रश्न १—शकुन्तला का आसीत्?

उत्तर—शकुन्तला विश्वामित्रस्य कन्या आसीत्। तस्याः मातुः नाम मेनका आसीत्।

प्रश्न २—दुष्यन्त कः आसीत्?

उत्तर—दुष्यन्तः हस्तिनापुरस्य राजा आसीत्।

प्रश्न ३—शकुन्तलायाः दुष्यन्तेन सह विवाहः केन विधिना अभवत्।

उत्तर—गान्धर्व विधिना अभवत्।

प्रश्न ४—महर्षि दुर्वासा शकुन्तलां किम् शापम् अददात्?

उत्तर—आः अतिथि परिभाविनी! एकाग्रचित्ता यं जनं ध्यायन्ती अत्रैव समागतम् तपस्विनम् मां न वेत्सि, स जनः दुष्यन्तः उन्मत्तः पूर्वम् उक्ताम् वार्तामिव स्मारितः सन् अपि त्वां मम पत्नीत्येवंरूपेण नाभिज्ञास्यति।

प्रश्न ५—शकुन्तलाः उभौ सख्योः नाम किम् आसीत्?

उत्तर—प्रियंवदा च अनसूया।

प्रश्न ६—ऋषि कण्वः कदा शकुन्तलां गर्भिणीभवितुम् समाचारः प्राप्नोति?

उत्तर—ऋषि कण्वः तीर्थयात्रायाः प्रतिनिवृत्य यदा आगच्छति तदा आकाशवाण्याः इदम् समाचारं ज्ञातम्।

प्रश्न ७—महर्षि काश्यपः शकुन्तलाम् प्रति किम् आशीर्वादं अददात्?

उत्तर—पुत्री! एते समिधाभिः यज्ञवेद्याः समन्तात् 'विहितानि स्थानानि पार्श्वभागेषु आकीर्णः कुशाः यज्ञियाः अग्नयः हुतद्रव्यगन्धैः पापं विघ्नं वा विशयन्तः त्वां पवित्रतां प्रापयन्तु।

प्रश्न ८—प्रस्थानकाले शकुन्तलया सह काः गच्छन्ति?

उत्तर—शकुन्तलया सह गौतमी एवं तपस्विन्यौ गच्छन्ति।

प्रश्न ९—कन्या वस्तुतः कस्य सम्पत्तिः भवति?

उत्तर—निश्चयेन कन्या परस्यैव धनमस्ति।

प्रश्न १०—चतुर्थ अङ्के प्रधानतः कस्य रसस्य निष्पत्तिः अभवत्?

उत्तर—वियोग शृंगारस्य निष्पत्तिः अभवत्।

प्रश्न ११—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' केन प्रणीतम् अस्ति?

उत्तर—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' महाकविना कालिदासेन प्रणीतम् अस्ति।

प्रश्न १२—पितरः कदा कृतार्थो भवन्ति?

उत्तर—पुत्र्यै गुणवान् वरं लब्ध्वा पितरः कृतार्था भवन्ति।

प्रश्न १३—'आः अतिथि परिभाविनी! इति कस्य उक्तिः अस्ति।

उत्तर—दुर्वासा मुनिना उक्तम् 'आः अतिथि परिभाविनी।'

प्रश्न १४—शकुन्तला दुर्वाससा केन हेतुना शप्ता?

उत्तर—शकुन्तला दुर्वासा अज्ञानवशात् अपमानितः अभवत् अतएव सा तेन शप्ता।

प्रश्न १५—उटजस्थिता शकुन्तला केन शप्ता?

उत्तर—उटजस्थिता शकुन्तला दुर्वाससा शप्ता।

प्रश्न १६—दुर्वासा शकुन्तलां किं शशाप?

उत्तर—दुर्वासा शकुन्तलां शशाप यत् स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपिसन्, कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।

प्रश्न १७—दुर्वासा कीदृशः महर्षिः आसीत्?

उत्तर—दुर्वासा सुलभकोपः महर्षिः आसीत्।

प्रश्न १८—दुर्वासायाः शापं श्रुत्वा प्रियंवदा किं अकथयत्?

उत्तर—प्रियंवदा अकथयत्-हा धिक्, हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। एष दुर्वासा सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगवलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्वा प्रतिनिवृत्तः।

प्रश्न १९—'कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति' इति केनोक्तम्?

उत्तर—'कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति' इति प्रियंवदयोक्तम्।

प्रश्न २०—प्रियंवदया प्रार्थितः दुर्वासा शाप निवारणाय कमुपायम् उक्तवान्?

उत्तर—प्रियंवदया प्रार्थितः दुर्वासा शापनिवारणाय अभिज्ञानाभरणम् प्रदर्शनम्, एव उपायम् उक्तवान।

प्रश्न २१—'को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति' इति कस्याः उक्तिः?

उत्तर—'को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति' इति प्रियंवदायाः उक्तिः।

प्रश्न २२—आकाशवाणी शकुन्तला विषये काश्यपम् किमाह?

उत्तर—आकाशवाणी शकुन्तला विषये काश्यपम् आह यत् ब्रह्मन्! त्वं स्वपुत्रीं शकुन्तलाम् दुष्यन्तस्य, तेजोधारिणीम् जानीहि।

प्रश्न २३—'यास्यत्यद्य शकुन्तला' इति केन उक्तम्?

उत्तर—'यास्यत्यद्य शकुन्तला' इति काश्यपः अकथयत्।

प्रश्न २४—पतिगृहगमनकाले शकुन्तलायै केन-केन के उपहाराः प्रदत्ताः?

उत्तर—पतिगृहगमनकाले शकुन्तलायै आश्रमवृक्षैः मांगल्यं क्षौमं लाक्षारसम्, आभूषणानि च दत्तानि।

प्रश्न २५—काश्यपेन शकुन्तलायै का आशीः दत्ताः?

उत्तर—काश्यपः शकुन्तलायै आशीर्वादः अददात् यत् त्वम् ययातेः शर्मिष्ठा इव पत्युः सम्मानपात्रं भव। यथा सा सम्राजं पुरुम् अवाप्नोत् तथैव त्वमपि सम्राज़पुत्रम् प्राप्नुहि।

प्रश्न २६—'अद्य शकुन्तला यास्यति' इति कारणात् काश्यपः कीदृशं वैक्लव्यम् प्राप्तवान्?

उत्तर—'अद्य शकुन्तला यास्यति' इति कारणात् काश्यपस्य हृदयम् उत्कण्ठया स्पृष्टम् कण्ठः अश्रुभिः गदगदः दर्शनं च चिन्तया जडम् अभवत्।

प्रश्न २७—शकुन्तलायाः सख्यौ के आस्ताम्?

उत्तर—शकुन्तलायाः सख्यौ प्रियंवदा अनुसूया च आस्ताम्।

प्रश्न २८—अतिस्नेहः किम् उत्पन्नं करोति?

उत्तर—अतिस्नेहः पाप आशंकां उत्पन्नं करोति।

प्रश्न २९—शकुन्तलायाः वियोगे तपोवनस्य का दशा अभवत्?

उत्तर—शकुन्तलायाः वियोगे तपोवनस्य सर्वे पशुपक्षिणः लताः, विटपाः च विरह व्याकुलिता अभवन्।

प्रश्न ३०—शकुन्तलया पुत्रकृतकः कः स्वीकृतः आसीत्?

उत्तर—शकुन्तलया पुत्र कृतकः एकः मृगः स्वीकृतः आसीत्।

प्रश्न ३१ मुनीनां धनं किमस्ति।

उत्तर—संयमेव मुनीनां धनमस्ति।

प्रश्न ३२—वनौकसोऽपि मुनयः कीदृशाः भवन्ति?

उत्तर—वनौकसोऽपि सन्तो मुनयः लौकज्ञाः भवन्ति।

प्रश्न ३३—पतिगृहे कथं व्यहर्तव्यम् इति अधिकृत्य काश्यपः किमुपदिष्टवान?

उत्तर—पुत्रि! पतिगृहं गत्वा गुरून् शुश्रूषस्व, सपत्नीजने प्रियसखिवृत्तिं कुर्यात्, भर्तुः प्रतीपं कदापि न भूयाः, परिजने दक्षिणा भवेः तथा च भाग्येष्वनुत्सेकिनी भवेः इति काश्यपः उपदिष्टवान्।

प्रश्न ३४—कां विना तपोवनं शून्यमिव प्रतिभाति?

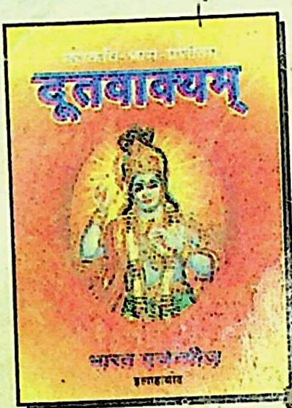
उत्तर—शकुन्तलां विना तपोवनं शून्यमिव प्रतिभाति।

प्रश्न ३५—कन्या कीदृशं धनमस्ति?

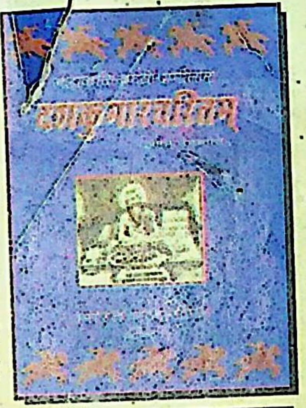
उत्तर—कन्या परकीय धनम् अस्ति।

पूर्णमिदं

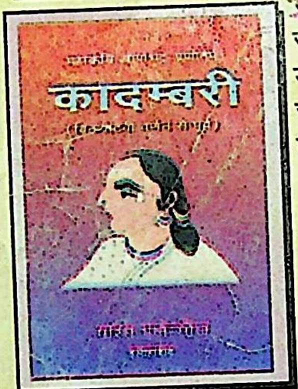
हमारे फर्म द्वारा प्रकाशित इण्टरमीडिएट संस्कृत की अन्य पुस्तकें



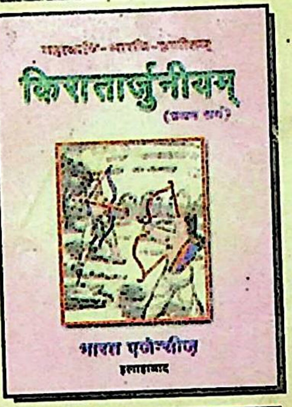
सम्पादिका डॉ० (श्रीमती) शैलकुमारी मिश्र



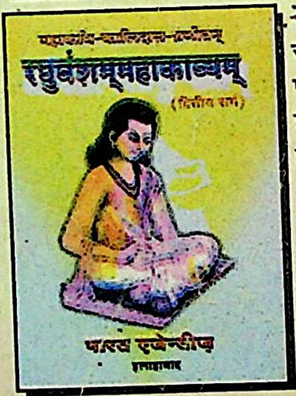
सम्पादक डॉ० विश्म्भरनाथ गिरि



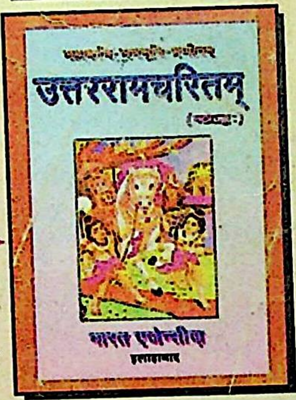
सम्पादक डॉ० सुरेन्द्र पाल सिंह



सम्पादक डॉ० शशांक चन्द्र



सम्पादक पं० दया शंकर तिवारी



सम्पादक डॉ० राम किशोर झा

वितरक : भारत बुक डिपो, इलाहाबाद, © 401994